Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीप जले, राह चले

रामदेव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यत्पादपद्मनखचन्द्रमणिच्छटाया—
विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूष्वदर्शि ।
पूर्णानुरागरससागरसारमूर्तिः—
सा राधिका मयि कदापि कृपां करोतु ।।

(श्री राधा सुधानिधिस्तव)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीप जले, राह चले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीप जले, राह चले

Deep Jale, rāh Chale

Ram Dev

रामदेव

Prathibha Prakashan Jullundur

प्रतिभा प्रकाशन, जालन्धर (पंजाब)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

	कुन्जन कुन्जन फिरत राधिका...!	१३
१.	वह जब महापुरुष खोजने निकली !	२५
२.	पलों के साज, सांसों के बोल	३४
३.	अनेक कालेर यात्रा आमार	४५
४.	क्लान्त पथिक का सम्बल	५५
५.	बनते मिटते दायरों की धूल-अटी तस्वीरें	६३
६.	आज के युग में निष्ठा कहां, कला में ?	७७
७.	टूटे साज—भटके गीत	८६
८.	दीप जले, राह चले	९३
९.	भटकनों के उजाले में	१०४
१०.	संगीत, न जिसका आदि अन्त	११४
११.	चक्रव्यूहों में से बढ़ते लोक-चरण	१२४
१२.	चौराहे और सलीब	१३३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुमने उस दृष्टि से मेरी ओर देखा था जिसमें अनकहे सभी कुछ कह दिया जाता है !

जब कहीं थक कर गिरने लगता हूं, वही दृष्टि मुझे संभालती है, फिर आगे और आगे चल निकलता हूं......

उसी दृष्टि के नाम जिसमें कितने ही 'गीत गोविन्द' अनबोले ही मुखरित होते रहते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन श्रौर मन के बीच दूर तक फैला रेगिस्तान है !

तपी दोपहरी की तेज़ श्रांधियों श्रौर भस्मासुर की तरह नाचते बवण्डरों में कौन कहे, किससे कहे ? कौन सुने, किसकी सुने ?

चलना तो फिर भी होता ही है क्योंकि एक ही जगह बैठे रहने का सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं ।

चलते चलते श्रचानक कोई नखलिस्तान श्रा जाता है तो यूं लगता है, श्रब यह रेगिस्तान का सफर रह ही कितना गया है ? वह सामने तो मंज़िल है !

मन श्रौर मन के बीच की दूरी मिटाने मनु-पुत्र सहस्राब्दियों से इस रेगिस्तान की श्रनन्त यात्रा पर निकला हुश्रा है । यात्रा श्रत्यन्त दुरूह है परन्तु मन से मन की बात कहने की लगन उससे कहीं श्रधिक प्रबल ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि ।

(अथर्व० १७।१।७)

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ।।

(धम्मपदं-कोधवग्गो)

...घाटे सेई अजाना बाजाय बीना तरनी ते
चल रे घाटे कलस खानि, भरे निते ।

(गीताञ्जली)

राजनीतिक स्वार्थों से मुक्त, घृणित आर्थिक स्पर्धाएं त्याग,
जाति वर्णों के बंधन खोल, निकट आएं खण्डित भू भाग !

(लोकायतन)

'सब आंखों के आंसू उजले, सब के सपनों में सत्य पला'

(दीप शिखा)

यों शूल-युक्त, यों अहि आलिंगित है जीवन;
पर, सुमन, सुधा का है स्वभाव मेरा, निश्चय;
निश्चय ही होंगे कण्टक परिणत सुमनों में,
बरसेगा अमृत और होगा अहि-विष का क्षय ।

(हम विषपायी जनम के)

ज़िन्दगी निकली मुसलसल इम्तिहाँ-दर-इम्तिहाँ ।
ज़िन्दगी को दास्तां ही दास्तां समझा था मैं ।।

(जिगर)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुञ्जन-कुञ्जन फिरत राधिका......!

'आलोक ट्रैवल्स' की 'राजलक्ष्मी' में हम लोग मैसूर-दर्शन के लिए निकले थे। इस दर्शन के पीछे प्रदीप बाबू का आग्रह था। कहने लगे, "सुन्दर किशोरी मार्गदर्शिका हो तो इस स्वर्ण अवसर को हाथ से जाने देना अद्वितीय मूर्खता होगी।" मित्र मण्डली के साथ मुझे भी घिसटना पड़ा।

'राजलक्ष्मी' पहाड़ी की चढ़ाई चढ़ कर 'चामुण्डी मन्दिर' के सामने रुकी तो सभी दर्शक मन्दिर देखने के लिए उतर पड़े। मैं औरों से कुछ पहले लौट आया तो देखा कि अजया एक वृक्ष के नीचे ऊंचे से पत्थर पर बैठी किसी गहरी सोच में डूबी, नीचे घाटी की ओर टकटकी बांधे देख रही थी। मैंने पूछा 'आप मन्दिर देखने नहीं गईं ?' अजया को अहसास हुआ कि वह गाइड की ड्यूटी पर है। मुस्कराते हुए बोली, "आपके लिए यह अनुभव है लेकिन मेरे लिए डेली रुटीन। कहिये मन्दिर कैसा लगा ? भारत के प्रमुख मन्दिरों में इसकी गणना होती है।" मैंने कहा, "मांझी का हुक्का हमेशा सूखा रहता है।"

उत्तर मिला, "लेकिन देखने की फुरसत किसे होती है ?" फिर वही सहज मुस्कान चेहरे पर लाते हुए बोली, "अपने मित्रों से कहिये, यहां समय बरबाद न करें। 'वृन्दावन गार्डज देखने के लिए समय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहुत कम रह जाएगा। हमें हर हालत में साढ़े आठ बजे उधर से वापिस लौटना है।''

'वृन्दावन गार्डन्ज़' की लाइट्स ऑन हुईं तो प्रदीप बलराज की पीठ पर धप्प जमाता हुआ बोला, ''सचमुच बहिश्त है यार! क्या अपना दफ्तर यहां नहीं खुल सकता?'' फिर बोला, ''भई, वह अपनी स्मार्ट गर्ल गाइड कहां है। उसे चाहिये कि हमें गाइड करे?'' बलराज बोला, ''घर चल बच्चू, भाभी जी से कह कर अगर तेरे सिर पर नए सैंडल न तुड़वाए तो नाम बदल देना!''

मुझे झील के बीचों बीच आसमान को चूमते फव्वारे अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। मैंने कहा, ''तुम लोग घूमों, मैं तो उधर बैठना पसन्द करूंगा।'' बलराज कहने लगा, ''अमां यार तुम्हें, बंगलौर के 'मधुबन' होटल वाले कमरे में ही बन्द रहना चाहिये था। अजीब सनकी हो। यहां आकर भी तुम्हें बैठने की सूझती है। अच्छा भई, तुम्हारा क्या है, तुम तो स्वर्ग में जाकर भी नर्क का कोई कोना तलाश कर लोगे लेकिन हमें तो बहिश्त की बहार लूटने दो?'' प्रदीप बोला, ''अबे उज़बक की औलाद, तू रहा फिलॉस्फर का फिलॉस्फर ही। अगर कहीं उर्वशी मिले तो उसे जरा इधर भेज देना। भई हम तो घूम फिर कर बार में बैठेंगे? यार इस बहिश्त में आकर भी अगर सोमरस का पान न किया तो जीना ही बेकार है?''

मैं झील की ओर मुंह करके मखमली घास पर रुमाल बिछा कर बैठने लगा तो देखा कि अजया रेलिंग का सहारा लिए वहीं खड़ी फव्वारों की ओर देख रही है। मुस्कराती हुई बोली, ''आपके साथी कहीं भीड़ में खो गए हैं या आप रास्ता भूल कर इधर आ निकले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं ?'' मैंने कहा, ''दोनों बातें ग़लत हैं। सिर्फ झील के हृदय से उठ कर फ़व्वारों का आसमान को चूमना ही हक़ीकत है। इसी महा-सत्य का आनन्दोपभोग करने इधर आ निकला हूं।'' ''और ये रंग-बिरंगे फूल, झरने, कुमकुमे, घास के मखमली फर्श, आपस में गले मिलती धाराएं, बिखर बिखर कर प्रकाश में झरते मोती, दूर तक अनेक रंगों में बहती पानी की चादरें, घूमते हुए रोशनी के दायरे, ये सब क्या झूठ हैं ?'' अजया ने पूछा। ''मैंने कहा, ''झील न हो तो कुछ भी न हो। मुझे तो इन सभी में झील के दिल की धड़कनों के सिवाय कुछ भी सुनाई नहीं देता !'' इस बार अजया मुस्करा न सकी, जैसे अपने आप से ही पूछ बैठी, ''झीलें, रेगिस्तानों में क्यों बदल जाती हैं ?''

° ° °

मैसूर दर्शन किए, वृन्दावन उद्यानों से लौटे बहुत दिन बीत गए लेकिन एक आवाज़ लगातार मेरा पीछा करती रहती है, 'झीलें रेगिस्तानों में क्यों बदल जाती हैं ? झीलें रेगिस्तानों में क्यों बदल जाती हैं ?''

प्रदीप का खत मिला था, ''बड़े भैया फ्रण्ट पर देश की सुरक्षा करते करते देश के काम आए। सारे घर का बोझ मेरे कंधों पर आ पड़ा है। मैडिकल चैक-अप् में लंग्ज़ में डिफैक्ट निकला है !''

खत पढ़ कर मुझे अजया की याद आई थी जो चामुण्डी मन्दिर के सामने वृक्ष के नीचे ऊंचे-से पत्थर पर बैठी टकटकी बांधे लगातार घाटी की गहराइयों में देख रही थी।

बलराज ने लिखा था, ''दुनिया में इन्सानियत रह ही नहीं गई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। बड़ी बहिन को, पति ने घर से निकाल दिया है। चार बच्चों समेत मेरे पास आ गई है। पारो से उसकी रोज़ चख़चख होती रहती है। आजकल नौकरी की तलाश में दीदी को दर दर की ठोकरें खाते देखता हूं तो कलेजा मुंह को आता है। पारो भी सच्ची है चार सौ रुपये में आठ जने कहां तक ज़िन्दगी का भार ढो सकते हैं ?''

मुझे लगा था कि झील का दिल सूखे मैदान में बदल गया है। इस मैदान में जगह जगह दरारें फैल गई हैं। आसमान पर सूरज पूरे ज़ोर से चमक रहा है, बादल दूर दूर तक कहीं दिखाई नहीं देते। आसमान चूमने वाले फव्वारे, धूल में लोटते बवण्डरों में बदल गए हैं।

अख़बार में बिहार के एक किसान की एक तस्वीर छपी है जिसका बच्चा मुंह फाड़े रो रहा है और किसान टकटकी बांधे झोंपड़ी में पड़े हल की तरफ देख रहा है। किसान की औरत आंखें फाड़े किसी शून्य में घूर रही है। छपा है कि मन्त्री महोदय बिहार के सूखाग्रस्त क्षेत्र में अन्न बांट कर गए हैं। कहते हैं दो मुट्ठी अन्न पेट में पहुंच कर पेट की आग को और अधिक भड़का देता है और फिर बेटे को बिलखते छोड़ मां, पेट की आग को बुझाने के लिए ख़ुद ही किसी आग का इंधन बन जाती है।

झीलें जब सूख जाती हैं तो रंगबिरंगे फूल तीखे कांटों में बदल जाते हैं, झरने गीत गाना बन्द कर देते हैं, कुमकुमों को अंधेरे निगल जाते हैं, घास के मखमली फ़र्श धरती के चेहरे पर किसी घिनौनी बीमारी के चकत्तों की तरह उभर आते हैं, आपस में गले मिलती धाराएं बन्दूकों और तोपों से धुआं उगलने लगती हैं, बिखर बिखर कर प्रकाश में झरते मोती एटमों के अंगारे बन कर धरती पर बरसने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगते हैं, दूर तक अनेकों रंगों में बहती पानी की चादरें आग के दरियाओं में बदल जाती हैं और रौशनी के घूमते हुए दायरे पलक झपकते ही आसमान में उल्काओं की तरह टूटने लगते हैं।

• ० •

इन्हीं सब के बीच एक आवाज़ और भी है जो लगातार मेरे कानों में गूँजती रहती है। कुल्लू पहुंचा तो अविनाश बाबू बोले, "यहां तक आए हैं तो आपको मनाली तक ज़रूर ही हो आना चाहिये। पण्डित जवाहरलाल जी भी विश्व समस्याओं के गोरखधन्धे से निकल आराम के लिए इधर आया करते थे। हमारे 'स्नो-व्यू ऑर्चर्ड' से आप पहाड़ को देखेंगे तो प्रकृति की महानता के आगे नतमस्तक हो जाएंगे!"

मैं और अविनाश बाबू मनाली से वशिष्ठ देखने जा रहे थे तो सामने के प्रपात को मन्त्र मुग्ध सा देखता रहा। यूँ लगा जैसे पतित पावनी भागीरथी स्वर्ग से नीचे उतर रही हो और उसी के साथ दूर किसी चोटी से आती किसी गडरिये की वंशी ध्वनि सुनाई दी। वंशी ध्वनि सारे वातावरण में फैलती जा रही थी। यूँ लगा वृक्ष, लता, प्रपात, जंगली फूल, नदी, घास फूस के घर, वशिष्ठ के पास का छोटा सा स्कूल सभी उस बांसुरी की धुन पर ताल देते हुए नाच रहे थे। गडरिया संसार की उथल पुथल, राजनैतिक अखाड़ों के दांव पेच, कूटनैतिक घातों से बेखबर अपनी वंशी में लीन था। दूर कहीं बूटों की खड़खड़ाहट इस बांसुरी की आवाज़ को निगलने के लिए रात के अंधेरों में डायन की तरह बढ़ रही थी। सोचता रहा कि अगर बांसुरी और बूटों की खड़खड़ाहट में ठन गई तो कौन जीतेगा?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वशिष्ठ मन्दिर के छोटे से बरामदे में एक दम्पति से भेंट हो गई। पति 'टाटा आयरन वर्क्स' में इन्जीनियर थे, पत्नी चटख लाल रंग की चुस्त पैन्ट पहने थीं और उसी रंग का स्वेटर। कला का अध्ययन कर पश्चिमी जर्मनी से लौटी थीं। अविनाश बाबू मेरी हस्त रेखाएं देखने में व्यस्त थे। जर्मन रिटर्न युवती को भी हाथ दिखाने का मोह हो आया। अविनाश बाबू उनके हाथ की लकीरों को देखते हुए बोले, "आपकी लव मैरिज है ? "वे बोली, व्ही फील सो।" अविनाश बाबू ने मेरी ओर देखा। मैंने कहा, " 'टाटा आयरन वर्क्स' की खड़खड़ और गडरिये की बांसुरी की आवाज़ के दो सिरों पर बंधे रस्से पर, मुहब्बत दुनिया भर के सामने सर्कस के रोप-डान्सर की तरह नाच रही है।" नव विवाहिता ने अविनाश बाबू से कहा, "युअर फ़्रेंड इज़ द मास्टर ऑव एक्सप्रेशन" मैंने कहा, "छोड़िये भी, अभी हमने गडरिये की बांसुरी से बहुत कुछ सीखना है।"

० ० ०

देवताओं और असुरों मे सौ वर्ष तक युद्ध होता रहा। महिषासुर ने इन्द्र को हरा दिया खुद इन्द्र बन बैठा। देवता रोते चिल्लाते ब्रह्मा जी को साथ लेकर विष्णु और शंकर के पास पहुंचे। देवताओं की दु:ख गाथा सुन कर विष्णु और शंकर के तेज से महिषासुर-मर्दिनी प्रगट हुई, चक्र और त्रिशूल से, खड्ग और शंख आदि से अलंकृत हो कर उन्होंने महिषासुर का संहार करके देवताओं को कष्ट मुक्त किया। महिषासुर कभी शेर बन कर लड़ा कभी हाथी बनकर और अन्त में आदमी के रूप में आधा ही भैंसे के मुंह से निकला था कि दुर्गा ने अपने खड्ग से उसे धरणिसात् कर दिया। देवताओं से देवी ने पूछा, "वर मांगो ?" उन्होंने कहा "जब भी कष्ट के समय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम आप को याद करें आप अवतरित होकर हमारी रक्षा करें।'' देवी ने 'तथास्तु' कहा और अन्तर्ध्यान हो गईं।

इधर इस बार कुछ कठिनाई आ पड़ी है। दैवी शक्तियां समय पर दुर्गा को याद करने से चूक गई हैं और इसी बीच महिषासुर पूरे तौर पर भैंसे के मुंह से निकल देवताओं की शक्ल बना कर लड़ रहा है। दुर्गा सोच रही हैं कि खड्ग प्रहार से कहीं कोई देवता ही न मारा जाए! उन्होंने खड्ग उठाने से पहले एक शर्त रख दी है— देवता अपने गले में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की माला धारण कर लें। महिषासुर शाप ग्रसित है माला धारण करने की सामर्थ्य उसमें नहीं। ऐसी माला धारण करने के बाद ही दुर्गा महिषासुर पर खड्ग प्रहार कर सकेंगी। —अब यह देवताओं पर निर्भर है कि वे माला धारण करने में कितनी शीघ्रता करते हैं?

० ० ०

वृन्दावन की परिक्रमा करते करते हम 'चैतन्य कुटीर' पर रुके थे! बाबा ललितादास जी अचानक भाव मग्न हो कर गाने लगे थे ''कुञ्जन कुञ्जन फिरत राधिका सबद सुनत मुरली को......''

मेरी आंखों में आंसू छलछला आए थे।

राधिका गली गली, कुञ्जन कुञ्जन भटक रही है। बंसी की आवाज़ को बूटों की खड़खड़ाहट और बमों की गड़गड़ाहट निगलती जा रही है। राधा बेचारी हरेक राही को रोक कर पूछती है— झीलें रेगिस्तानों में क्यों बदल रही हैं? निकुञ्ज मरघटों में क्यों बदल रहे हैं? बोलो, तुम्हीं कहो मैं अपने श्याम की मुरली ध्वनि को किन मरघटो में खोजूं?''

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हर राही, राधा की तरह पागल नहीं है। गर्म रेत पर उसके पैर जलते हैं तो बग़ैर उत्तर दिए ही राधा का हाथ झटक कर आगे निकल जाता है!

निकुञ्ज मरघटों में बदलते जा रहे हैं लेकिन राधा आज भी उसी तरह भटक रही है। कभी कभी थक जाती है तो चामुण्डी मन्दिर के पेड़ के नीचे पड़ी चट्टान पर पल भर के लिए बैठ घाटियों की तरफ टकटकी बांध कर देखने लगती है। जब कोई उससे पूछता है तो उसे मुरली वारो स्याम समझ कर मुस्कराने लगती है। कहती है—यहीं उलझ गए तो वृन्दावन उद्यान में ठहरने का समय भी खो बैठोगे? राही कुछ समझ नहीं पाता तो राधा फिर अकेली भटकने लगती है और झील के किनारे खड़े होकर उसकी आँखों में दूर दूर तक सायं सांय करते दहकते जलते रेगिस्तान घूम जाते हैं।

दूर कहीं मनाली के पहाड़ों पर किसी गडरिए की वंशी ध्वनि वायुमण्डल में तैर रही है और राधा हजारों मील दूर मरघटों में भटक रही है। वंशी ध्वनि और राधा के बीच एक बहुत बड़ा दहकता रेगिस्तान है!

मैं चाहता हूं कि यह रेगिस्तान झील में बदल जाए? किसी 'मानसरोवर' के पास, कृष्ण राधा के पास आ बैठें? राधा घाटी से नजरें हटा कर कृष्ण की ओर देखती हुई कहे, "विरह-अनल में जली कहां तक क्या जानो गिरधारी?"

ऐसी ही मनस्थिति में इन निबन्धों की रचना हुई है। जर्मनी से लौटी एक महिला ने अविनाश बाबू से कहा था, "आपके मित्र वर्णन शैली के पारंगत हैं?" अगर ऐसा होता तो क्या ये रेगिस्तान यूं ही राधा के बोलों को निगलते रहते?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऐसी मनस्थिति में जो भी मैंने लिख दिया है, वह केवल इसलिए कि शायद कोई भटकती राधा अचानक इन पग चिन्हों को देख मुरली के सबद तक पहुंच जाए ? एक राधा के आंसू गिरे थे तो 'मान सरोवर' बना था, शायद किन्हीं आंसुओं से ये रेगिस्तान झीलों में बदल जाएं !

रामदेव

"राधा-बिहारी निकुञ्ज'
१३६-एल मॉडल टाउन
होश्यारपुर

८. ६. ६८

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Sri Pratap Singh
Library
SRINAGAR

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीप जले, राह चले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह जब महापुरुष खोजने निकली !

कहानी धनुर्धारी राम के पास पहुंची, विनय पूर्वक करबद्ध मुद्रा में बोली, "सविनय निवेदन की आज्ञा हो तो अपनी बात कहूं ?" राम अपने राज-सिंहासन पर विश्राम की मुद्रा में बैठे थे। उन्हें यों लगा, मानो सामने खड़ी स्त्री ने कोई नकली चेहरा पहन रखा है। वह युवती की तरह चलती हुई आई थी, इन्द्रधनुषी वस्त्रों से सुसज्जित थी, बोली थी, तो कानों को यों लगा था, मानो किसी सरल हृदय बालिका के मुंह से हरसिंगार के फूल झरे हों, परन्तु उसके चेहरे पर असंख्य झुरियां थीं और नेत्रों में अजीब-सी चमक। राम इस अजीब नारी-मूर्ति को देख कर सकपका गए। बोले, "तुम कौन हो! क्या कहना चाहती हो ?" कहानी बोली, "मुझे लोग कहानी कह कर पुकारते हैं महाराजाधिराज ! आज आज्ञा हुई है कि मैं महापुरुषों के बारे में कुछ कहूं। इस आशा से आपके पास आई हूं कि आपके मुंह से सुनी बात, अपने मुंह से बोल, लोगों तक पहुंचा दूं ?"

राम मुस्कराते हुए बोले, "लेकिन अब तो लोगों ने हमें महापुरुष मानने से इनकार कर दिया है, अतः हमारी बातों से तुम्हारा घर पूरा न हो सकेगा।" कहानी को सोच में डूबा देख, राम बोले, "अगर कुछ प्राप्त करना ही है तो योगिराज कृष्ण के पास जाओ। वे ठहरे राजनीति में पारंगत, वही शायद तुम्हें कुछ सुझा सकें ?"

कहानी ने भी कृष्ण के दरबार में पहुंच साष्टांग प्रणाम किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और नम्र स्वर में बोली, "हे महापुरुष, मेरी झोली में नीति के कुछ वचन डालिये ताकि मैं कृतकृत्य हो सकूं।"

कृष्ण बोले, "तुम्हारे कहने से ही मैं महापुरुष बन जाऊंगा क्या ?" कहानी बोली, "आप ही ने तो कहा है कि 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ..' फिर आप महापुरुष हुए कि नहीं ?"

कृष्ण मुस्कराते हुए और बांसुरी को उंगलियों में नचाते हुए बोले, "वह बात तो पुरानी हो गई। अब तो लोग कहते हैं कि महापुरुष आसमान से नहीं उतरते। सामाजिक परिस्थितियां और वर्ग-संघर्ष महापुरुषों को पैदा करते हैं। अब तुम्हीं कहो कि सामाजिक परिस्थितियों और संघर्षों से बड़ा कौन हो सकता है ?"

कहानी भोली भाली गोप बाला की सी आवाज़ में बोली, हे नर-शार्दूल, तो क्या ये परिस्थितियां और संघर्ष सीधे आसमान से अवतरित होते हैं ?"

कृष्ण बोले, "यह प्रश्न राजनीति से सम्बन्धित नहीं है, इसका सम्बन्ध दर्शन से ही प्रतीत होता है, अतः व्यास या कपिल ही इसका उत्तर दे सकेंगे।" कह कर कृष्ण अपनी बंसरी बजाने में लीन हो गये।

कहानी व्यास जी के आश्रम में पहुंची। उनकी समाधि खुलने पर बोली, "ऋषिवर, शंका यह है कि परिस्थितियां महापुरुषों को जन्म देती हैं अथवा महापुरुष परिस्थितियों को अपने आदर्शों के सांचे में ढालते हैं।"

व्यासदेव गम्भीर मुद्रा में बोले, "दोनों अन्योन्याश्रित हैं। परन्तु तुम्हारा प्रश्न किस प्रसंग में है ?"

कहानी बोली, "मैं किसी महापुरुष की खोज में निकली हूं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यासदेव व्यंग्यात्मक शैली का आश्रय लेते हुए कहने लगे, "मैंने और वाल्मीकि ने जिन महापुरुषों की रचना की है उन्हें आधुनिक इतिहासज्ञों ने इतिहास के पात्र मानने से इनकार कर दिया है। किसी भी महापुरुष का ऐतिहासिक व्यक्तित्व होना आवश्यक है। यहां समय नष्ट करना व्यर्थ है। मेरी राय मानो तो सीधी श्रमण महावीर या बुद्ध के पास चली जाओ।"

कहानी बेचारी, रातों-रात महावीर से लेकर रानी लक्ष्मीबाई तक के दरवाजों की सांकल खड़खड़ा आई, परन्तु हर एक ने अपने को महापुरुष मानने से साफ़ इनकार कर दिया। हां जिसके पास भी वह गई उसने विचित्र-विचित्र प्रकार की बातें सुना कर उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल अवश्य मचा दी। निराश होकर कहानी अपनी चारपाई पर जो लेटी तो सुबह देर तक सोती रही।

आंखें मलती हुई उठी तो कमरे की पूर्वीय दीवार के सुराख में से होती हुई सूर्य-किरण, प्रकाश की एक लम्बी रेखा बनाती, मेज़ पर पड़ी डायरी से बात करने चली आई थी। कहानी को यों लगा, मानो गुहा-मानव की अंधेरी गुफा में भानु-रश्मियों ने अपना प्रकाश बिखेर दिया हो। उसके दिमाग में विचार कौंध गया कि जब अजन्ता और ऐलोरा की गुफाओं में भानु-रश्मियां अपना प्रकाश बिखेरतीं अथवा सूर्य-किरणें गुफाओं में बनी बावड़ियों के स्वच्छ जल से गले मिल गुफाओं की दीवारों पर प्रतिबिम्बित होतीं, तो चीवरधारी कलाकारों के हाथ, तूलिकाओं अथवा छैनी-हथौड़े के स्पर्श के लिए मचल उठते। उनके हृदयों में बनी प्रतिमाएं, गुहा-भित्तियों पर युगों-युगों तक अमर होने के लिए साकार हो उठतीं।

कहानी के मन में, महापुरुषों से सुनी बातें प्रतिध्वनित होने लगीं, आलस्य पल भर में भाग खड़ा हुआ, उसने लेखनी के स्पर्श के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए मचलती उंगलियों में लेखनी थाम, अपनी डायरी पूर्ण करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया ।

—मैं तो इन महापुरुषों की बातें सुन-सुन कर पागल हो गई हूं । महाराणा प्रताप की बात अब भी कानों में गूंज रही है, कहने लगे, "मुगलों के हाथों में छटपटाती हुई स्वतन्त्रता यदि मुझ में प्रेरणा न फूंकती तो मैं महापुरुष कैसे बनता ? और फिर तुम तो व्यर्थ ही मेरे पास चली आई हो, मैं महापुरुष हूं ही कहां ? मातृभूमि के जागरूक प्रहरी के नाते मैंने तो अपना कर्तव्य भर निबाहा है । और, फिर यह कर्तव्य निबाहते-निबाहते भी मैं तो भूख से बिलखती बच्ची को देख लड़खड़ा चला था, वह तो मेरे भाग्य की बात कहो कि उचित अवसर पर पृथ्वीराज जी के पत्र ने मुझे झिझोड़ कर जगा दिया । या फिर इस सम्मान की अधिकारिणी मेरी पत्नी है जिसने अपने लहुलुहान तलवों की परवाह न कर मेरे घायल शरीर को सहलाया है । महापुरुष तो वे हैं जो धर्म-वेत्ता हैं, अपने सदुपदेशों से कलुषित हृदयों को पवित्र करते हैं ।" और गुरु नानक ने कहा था, "सब में रम रहिया प्रभु एकै", "मैं महापुरुष कहां ? अगर मुझसे पहले महाज्ञानी अपने को तिल-तिल जला कर मेरा मार्ग प्रशस्त न कर जाते तो मैं भी कहीं अन्धकार में भटक रहा होता ?" मुझे तो यों लगता है कि महापुरुषों को महापुरुष बनाने में 'काल' की भी अपनी एक विशेष भूमिका होती है । विशेष युग की जटिल समस्याएं भी महापुरुषों को निरन्तर घड़ती रहती हैं ।

ईसा मसीह ने मुझ से कहा था, "मैं महापुरुष नहीं हूं । महापुरुष तो वे हैं, जिनके अथक प्रयत्नों ने मुझे अपने हृदय की बात कहने का सुअवसर दिया है । मैं तो विरासत में मिले वातावरण का यथाशक्ति लाभ उठा रहा हूं ।" स्वामी दयानन्द ने कहा था, "मुझ में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महानता कहां ? मैं तो उस चौकीदार की तरह हूं जो रात के गहन अन्धकार में, चौराहे पर लगे खम्भे की लालटेन जला दिया करता है ताकि लोग पथभ्रष्ट न हों। मैं तो पाखण्ड के अन्धकार का सत्य के प्रकाश से खण्डन करने वाला साधारण सा व्यक्ति हूं।" गांधी जी ने कहा था, "ईसा मसीह अपनी जगह ठीक थे, हज़रत मुहम्मद अपनी जगह ठीक थे, स्वामी दयानन्द अपनी जगह ठीक थे और मैं अपनी जगह ठीक हूं।" मैं समझती हूं कि महापुरुषों के निर्णय में 'देश' का भी अपना महत्त्व होता है जिसे नज़र-अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। ईसा यदि अपनी बात दयानन्द के देश में कहते अथवा दयानन्द अपनी बात मुहम्मद के देश में कहते तो इतिहास की धारा में वे बह गए होते, अटल रूप में खड़े न रह पाते।

महात्मा बुद्ध ने पद्मासन की स्थिति में बैठ, अभय दान देते हुए कहा था, "मैं यदि शिवा जी की परिस्थितियों में होता तो यों समाधिस्थ मुद्रा में बैठ पाता क्या ? फिर इस बैठने में भी मेरी महानता कहां ? मैं तो ऐसा स्वार्थी हूं जो इस हाहाकार में महाशान्ति को खोज लेना चाहता हूं।" गुरुगोविन्दसिंह वीरासन पर बैठे अपने बाज की ओर देखते हुए बोले थे, "गुरु नानकदेव की माला ही मेरे हाथ की तलवार बन गई है। तुम मेरे दिल की जलन को नहीं जानती हो, तभी मुझे महापुरुष समझ बैठी हो। अगर जान पातीं कि हमें माला को तलवार बनाने से पहले कितने खून के आंसू रोने पड़े हैं तो शायद मेरे लिए ही तुम्हारा मन पसीज उठता।" कबीर ने कहा था, "मैं जिस वातावरण और जिन परिस्थितियों में से गुज़र रहा हूं, उनमें जो ठीक समझता हूं वही कहता हूं। कौन ऊंच और कौन नीच, यह समझने की फुरसत मेरे पास नहीं है।" सोचे बगैर रह नहीं पाती कि परिस्थितियां भी महापुरुषों को निखारती संवारती रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रोशनदानों, खिड़कियों और दरवाज़ों से होता हुआ प्रकाश मेरे कमरे में चारों ओर फैल गया है। पहले-पहल आई सूर्य किरण भी इसी महाप्रकाश में कहीं घुल मिल गई है। अन्धकार कमरे की दीवारों की दरारों में, खुले किवाड़ों के पीछे और पुस्तकों की अलमारी के नीचे जा छिपा है। मैं तो अपनी डायरी में ऐसी उलझी कि समय का ध्यान ही नहीं रहा। इस प्रकाश में आलसी बन कर बिस्तर पर पड़े रहना शोभा नहीं देता। अच्छा ! जल्दी-जल्दी डायरी खत्म करके अपनी दिनचर्या के लिए निकल पड़ूं, ताकि आज का नया दिन मेरे अनुभवों में कुछ और जोड़ जाए, मेरे रूप को कुछ और निखार जाए, मेरे बोलों में कुछ और रस घोल जाए।

सभी महापुरुषों की बातें सुन सुन कर मैं तो अजीब गोरखधन्धे में उलझ गई हूं। कोई भी अपने को महापुरुष नहीं कहता ! इन महापुरुषों के अकाट्य तर्क को सुन सुन कर देश, काल, और स्थिति की महत्ता को भी झुठला नहीं पाती। फिर भी अपने मन की बात कहे बग़ैर तो रह नहीं सकती। मां सरस्वती ने कहा था, "बोल, क्या वरदान मांगती है ?" मैंने अपने आंसुओं से मां के चरण पखारते हुए कहा था, "मां ! मुझे वरदान देना ही है तो यही दो कि मेरे बोल तुम्हारी वीणा के बोलों की तरह सच्चे हों, इसके तारों की झंकार की तरह जन-मानस मेरी झंकारों से युगों-युगों तक झंकृत हों, इसकी रागनियों की तरह मेरे बोलों में ताल और लय हो, गति और रस हो, दिव्यता और मधुरता हो।"

अपने अन्तर में झांकती हूं तो यही पाती हूं कि ये सब महापुरुष अपने को लाख नकारें, लेकिन मैं इन को नकार नहीं सकूंगी। इनकी महानता तो मुझे भीतर तक छू गई है। मेरी साधना अपनी साधना कहां है ? इनकी साधना ने ही तो मुझ पर अपना स्नेह बरसाया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह ठीक है कि देश, काल और परिस्थितियों का अपना महत्त्व है परन्तु उनका महत्त्व ही सब कुछ नहीं है, उससे परे भी कुछ है, जिसके कारण महापुरुष, महापुरुष हैं। असंख्य लोगों की तरह ये महापुरुष अपने देश, काल और परिस्थितियों से न केवल प्रभावित हुए हैं, अपितु अपनी निष्ठा, मनोबल, साधना, शूरवीरता और त्याग से इन्होंने देश, काल और परिस्थितियों को प्रभावित भी किया है। सबने अपने-अपने ढंग से सत्य के विकास में योगदान दिया है, मानव को सत्यं, शिवं, सुन्दरं के लक्ष्यों तक पहुंचाया है। जिन्होंने परम्पराओं के मानवीय मूल्यों की थाती को संजो कर, परम्पराओं को प्रगतिशील बनाते हुए उनका विकास किया है, जो दूसरों के सुख के लिए अपना सुख लुटाते रहे हैं, जिन्होंने खुद गरल-पान करके, जन मानस को अमृत से सींचा है, आप सूली पर झूल कर, मनुष्य को मानवता के झूलने में झुलाया है, गोलियां खाकर अपने रुधिर से विकास के पौधे को सींचा है, जो जब तक जिए हैं, दूसरों के लिए जिए हैं और मरे हैं तब भी दूसरों के लिए मरे हैं, उन्हें महापुरुष कैसे न मानूं ? वे लाख अपने को छोटा कहें, अकिंचन कहें, परन्तु मेरे लिए तो वही पूज्य हैं, स्तुत्य हैं। इन महापुरुषों की चरण रज से ही तो मैंने अपनी मांग भरी है, मेरे तो यही देवता है, वन्दनीय हैं, अनुकरणीय हैं।

आपने महापुरुषों के विषय में मुझसे कुछ सुनना चाहा था, लेकिन मैं तो अपनी डायरी में ही उलझ कर रह गई। आप रूठ न जाएं, अतः आप से भी दो बोल कहना चाहती हूं।

महापुरुषों के बाह्य को देखने में ही मत उलझे रहिये, उनके भीतर झांक कर देखिये तो आपको उनमें असामञ्जस्य की अपेक्षा सामञ्जस्य ही अधिक दिखाई देगा। इन तलवार उठाने वालों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और माला पकड़ने वालों का, समाधि लगाने वालों का और द्वार-द्वार अलख जगाने वालों का, धनुष और चक्र पकड़ने वालों का तथा बांसुरी की तानें फूंकने वालों का लक्ष्य एक ही था। गुहा-मानव, विघ्न-बाधाओं से लड़ता, जूझता पशुत्व से देवत्व तक पहुंचे, यही इनकी साध थी, इसी के लिए ये जीवन में प्रयत्नशील रहे, इसी के लिए ये रणों में जूझे और अमर हुए। सत्य निरन्तर विकसित हो, सत्य की पवित्र धारा मानव-मन को निरन्तर स्वच्छ करती रहे यही इनकी कामना थी। इनका एक स्वार्थ भी था, लेकिन उसे पूरा करने का उत्तरदायित्व ये आप पर छोड़ गए हैं। ये चाहते थे कि इस धरती पर महापुरुषों की, इन जैसे पहरुओं और मार्ग-दर्शकों की परम्परा सतत रूपेण फलती फूलती रहे ताकि सत्य विकसित होता रहे।

इन्होंने जिन लक्ष्यों को पाने के लिए अपने युग की सीमाओं में रहते हुए कार्य किया है आप अपने युग में उन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने का अटल व्रत लीजिए। तोप तलवार पुरानी बातें हुईं, अब तो अणुबमों को भी आप समुद्रों की अतल गहराइयों में फेंकने की बात करते हैं, ये शुभ लक्षण हैं। देखिये ! इन नरमुण्डों और नरमेधों की कहानियां सुनते-सुनाते मेरा कलेजा छलनी हो गया है, रक्तपात और हिंसा की बात करते-करते मैं थक गई हूं, बच्चों को नेजों पर उछालने की बातें और अबलाओं को लूटने की बातें कह कह कर मेरी आवाज़ लड़खड़ा चली है। आप महापुरुष बनिए, ताकि मैं बच्चों की किलकारियों की और माताओं की लोरियों की बातें कह-कह कर अपने दिल के घावों को सी सकूं। मेरी आंखों मे हरे-भरे खेत, सच्चे मन और त्यागी लोगों के सुकृत्य लहलहा सकें। मुझे आप से कहीं ज़्यादा आप पर विश्वास है। अभी सृष्टि-क्रम में मानव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बच्चा ही तो है, कभी बहक जाता है तो फिर ठोकर खाकर राह पर भी आ जाता है। अगर महापुरुषों की परम्परा बनी रही तो किसकी मजाल है कि मेरी भरी मांग से सिन्दूर खुरच डाले। और, फिर मैं तो आपकी अपनी कहानी हूं न? भला आप मुझे जीते जी क्यों मारने लगे?

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पलों के साज़, सांसों के बोल

ज़माना कुछ आगे सरक आया था। आदमी ने अपना भोजन जुटाने के लिए पत्थर और धात के हथियार सहेजना सीख लिया था। पिता ने, जवानी में कदम रखते पुत्र से कहा, "आज तुम भी हमारे साथ शिकार को चलोगे।"

पुत्र ने विभिन्न आकृतियों के चमकदार हथियारों को देखा, वह उनकी ओर आकर्षित हुआ, पिता की तरह बहादुर बनने की इच्छा उसके मन में हिलोरें लेने लगी। उसने एक चमकदार बरछा उठाया और पिता के साथ हो लिया। और भी कुछ लोग साथ थे। शिकार शेर का हुआ, शेर ने मरते मरते भी एक आदमी को मार गिराया। लोग शिकार लेकर घर पहुंचे तो खूब खुश हुए। एक स्त्री अचानक रोने लगी।

पुत्र ने पिता से पूछा—"यह रोती क्यों है ?"

पिता ने कहा, "आज के नाच में इसके साथ वह आदमी नहीं नाच सकेगा जिसे शेर ने मार गिराया है।"

पुत्र ने पूछा, "मरने से रोना आता है ?"

पिता ने कहा, 'हां'।

पुत्र ने पूछा, 'क्यों ?'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पिता ने कहा, "इसमें क्यों का क्या सवाल है? जो होता है सो होता है।"

पुत्र उस रात सो न सका, सोचता रहा। अगले दिन नाचते हुए उसने एक गीत गाया, जिसका भाव था—'तुम मत नाचो, क्योंकि तुम्हारे नाचने से वह स्त्री रोने लगती है, जिसे रोते देख मेरा नाचने का आनन्द मर जाता है।'

लोगों ने खूब ध्यान से उस पुत्र की आवाज़ को सुना, उसमें कुछ जादू-सा था। पुत्र ने गीत में एक कड़ी और जोड़ी—'अगर तुम्हारे पास बैठकर कोई रोता है तो तुम हंस नहीं सकते, तुम्हारी हंसी कहीं गुम हो जाती है। शायद एक का रोना दूसरे से हंसने की ताकत छीन लेता है।' उस कलाकार का नाम कोई नहीं जानता, क्योंकि इतिहास-लेखकों ने उसका नाम जानने के लिए रिसर्च नहीं की। वह कौन सा, पड़ोसी देश को जीतने वाला राजा था कि उसका नाम ढूंढ़ा जाता?

उसका नाम आज तक कोई नहीं जान सका, परन्तु फिर भी उसके बोल तैरते रहे, लोगों के मन में उतरते रहे। कुछ लोगों ने उन बोलों को अनसुना कर दिया, कुछ न कर सके। उन्होंने उनमें कुछ और कड़ियां जोड़ दीं। घर घर में यही गीत गूंजने लगे, गूंजते रहे सरकते रहे; सरकते रहे बहते रहे; बहते रहे मनों को धोते रहे। और फिर इन गीतों की पकड़ में एक दिन कलिंग-विजय करने वाला सम्राट् अशोक भी आ गया। उसे हथियार फेंकते देख लोगों ने दांतों तले उंगलियां ले लीं। सम्राट् नेकहा—'बुद्धं शरण गच्छामि', 'धर्मं शरणं गच्छामि', 'संघं शरणं गच्छामि'।

राजदरबारियों में से शायद कुछ एक ने सोचा, 'हमारा राजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कायर हो गया है।' लोगों को उनकी अक्ल पर यकीन हो आया और फिर शकों और हूणों के घोड़ों के पैरों की धूल से आसमान ढंक गया, खिलजियों और तुग़लकों, गुलामों और मुगलों की तलवारों की टकराहट से बिजलियां चमकने लगीं, लेकिन इन्हीं सब के बीच वे पागलों के गीत भी लगातार सरकते रहे, बहते रहे।

लोग लड़ते-लड़ते थक जाते, ज़िन्दगी से निराश हो जाते, फिर इन्हीं गीतों के सहारे ज़िन्दगी के चार दिन काट देते। उस गुहा-मानव के पुत्र ने जो नन्हा-सा बीज बो दिया था वही इन आंधी तूफानों, बिजलियों और गड़गड़ाहटों के बीच बरगद के वृक्ष की तरह निरन्तर फैलता रहा, पथिकों की थकन हरता रहा।

यह बरगद का पेड़, दोपहर की बरसती आग में हर किसी को मूक निमन्त्रण देता रहता। लोग इसकी घनी छाया में बैठ कर सुस्ताते और फिर ताजा दम हो अगले पड़ाव की ओर बढ़ चलते।

एक दिन उस वृक्ष के नीचे बैठे एक व्यक्ति के मन में स्वार्थ आ बैठा। उसने आराम करते लोगों से कहा।

"यह वट वृक्ष मेरे दादा के परदादा लगा गए थे। मैं ही इसका असली वारिस हूं।"

एक नवाब की सवारी पास से गुज़र रही थी। नवाब ने सोचा, आदमी काम का है। उसने कहा, "अच्छे से अच्छा खाने को दूंगा और बढ़िया से बढ़िया पहनने को, तुम मेरे साथ चले आओ।"

उस स्वार्थी आदमी ने पूछा, "मुझे आपके पास क्या करना होगा?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवाब ने कहा, "यही कुछ, जो उस वृक्ष के नीचे बैठ कर रहे थे यानी हमारे हुज़ूर में बैठ कर दादा, परदादा की कहानियां कहनी होंगी या फिर खाने, कपड़े के बदले हमारी दरियादिली के गीत लिखने होंगे।"

बात स्वार्थी व्यक्ति के मन लग गई। उसने सोचा, "सौदा बुरा नहीं है, खूब मज़े में गुज़रेगी।"

वह नवाब के साथ हो लिया। इस तरह बहते दरिया का पानी एक गढ़े में गिर कर गंदला होने लगा। फिर बहुत से गढ़े बनते गए, उनमें पड़ा पानी गलता-सड़ता रहा, सूखता-जलता रहा और दूसरी ओर दरिया का पानी इन गढ़ों के पानी की बदकिस्मती पर दुःखित होता आगे बढ़ता रहा।

इस बहते दरिया के पानी में राजा रंक, अमीर-गरीब, सुखिया दुखिया, सभी डुबकी लगा-लगा कर पवित्र होते, प्यास शान्त करते और उसके किनारे लगे वृक्षों की छाया में बैठ कर थकान दूर करते।

रजवाड़ों और नवाबों को, उनकी छत्रछाया में पलने वाले चाटुकारों ने सलाही दी, "लोगों की यह मजाल कि आपकी महफिलें वीरान कर दें। इस सारे पानी में ज़हर घोल दीजिये। फिर देखिये ये टके-टके के लोग खुद आपके कदमों में आ गिरेंगे!

नवाबों और रजवाड़ों ने कहा—"ज़रा से ज़हर से क्या बनेगा?" अपने मालिकों के दुःख से द्रवित होकर चाटुकारों ने कहा, "ऐसा यज्ञ रचाइये कि दरियाओं के दरिया ज़हरीले हो जाएं। अपने देश के गोरे पुरोहित ऐसे मन्त्र-तन्त्र जानते हैं। वे जाने की सोच रहे हैं अतः आप उनसे वे सब सीख लीजिये ताकि यथासमय इनका सदुपयोग किया जा सके।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उधर पुनीत यज्ञ शुरु हुआ और इधर दरियाओं के निर्मल, पवित्र जल में; कटे बच्चों की, बलात्कार की गई स्त्रियों की, टुकड़े-टुकड़े हुए मर्दों की और छलनी हुए बूढ़ों की लाशें बहने लगीं। यह ज़हर ऐसा था कि इसके छूते ही दरियाओं का पानी ज़हरीला हो गया। इसे पीते ही मुहब्बत मरने लगी, इन्सानियत तड़पने लगी।

पुराने बरगद के नीचे बचे खुचे लोगों की फिर बैठक जमी। सब-के-सब अपने-अपने ग़म में डूबे हुए दुःखों में भटके हुए बैठे रहे। सबके तन कहीं, मन कहीं! कुछ बुज़ुर्गों ने राय दी, "ऐसे बैठे रहने से क्या होगा? चलो, कुछ हिम्मत करें।" सभी ने एक आवाज़ में कहा, "करने को रह ही क्या गया है? देख नहीं रहे हैं आप, हिरोशिमा नागासाकी की रही-सही कसर पूरी हो रही है?"

बुज़ुर्ग फिर भी बुज़ुर्ग थे। उनमें से एक बोला, "मैं एक तरकीब जानता हूं। उस पर अमल किया जाए तो ज़हर अमृत बन सकता है।"

'क्या यह सम्भव है?" सब लोगों के मुंह खुले के खुले रह गए।

बूढ़े ने कहा, "अगर तुम लोग सिसकती सुहागनों, तड़पती माओं, बिलखते बच्चों, बरबाद जवानों और बेसहारा बूढ़ों के आंसुओं को अपने दिलों में समेट लो और अपने दिल के लहू से उन्हें पवित्र करके उन बूंदों को दरियाओं के पानी में मिला दो तो देखते-देखते ज़हर की ताकत नष्ट हो सकती है।"

जवानों ने एक दूसरे की ओर देखा। उनकी दृष्टि में शंका थी, भय था, निराशा थी, अविश्वास था! एक ने कहा, "यार, घबराते क्यों हो? अपने पास अब रह ही क्या गया है? मरना ही है तो सलीके से तो मरो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पंचायत खतम हुई, सभी लोग बुज़ुर्गों के कहे को पूरा करने निकल पड़े।

देखते-देखते दु:खित और निराश लोगों के आंसू, कलाकारों के दिलों के खून में पवित्र हो-हो कर दरिया में गिरने लगे, ज़हर का असर घटने लगा, रजवाड़ों और नवाबों के स्वार्थ छटपटाने लगे।

एक दिन सारे हालात पर ग़ौर करने और भविष्य के बारे में विचार-विनिमय के लिए बरगद के नीचे फिर कलाकारों की सभा इकट्ठी हुई। एक को स्वार्थ ने फिर आ दबाया। गला फाड़ता हुआ बोला, "सबसे अधिक दिल का ख़ून मैंने उंडेला है इसलिए मैं सब से अधिक प्रगतिवादी हूं।"

दूसरे ने कहा, "बकता है, सब से अधिक तरक्कीपसन्द मैं हूं, क्योंकि मैंने अनगिनत आहें भरी हैं।"

तीसरा बोला, "तुम दोनों प्रतिक्रियावादी हो, मैं तुमसे बहुत महान् हूं क्योंकि लोगों में मेरे कहे को अधिक सुना जाता है।"

चौथे ने कहा—तुम सब गधे हो। मेरी रचनाएं अमर हैं क्योंकि मैंने हमेशा सुन्दरता के गीत गाए हैं, सदैव उच्चकोटि की काव्य रचना की है।"

पांचवां भी क्यों पीछे रहता। गरज उठा, "अबे अहमको! तुम्हें कला के बारे में खाक पता है? मैं जनता का सही प्रतिनिधि हूं, क्योंकि मैंने मज़दूरों-किसानों के संघर्षों की कहानियां लिखकर 'आर्ट फार आर्ट सेक' की धज्जियां उड़ा दी हैं।"

छठे ने कड़कते हुए कहा, "व्हट ए नॉनसेंस! इज़ देयर ऐनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हु हैज लैंड् द फॉरन कल्चरल डैलीगेशन्ज़ थ्राइस इन सच ए स्माल एज ?''

सातवां चिंघाड़ा—'आर्ट फार आर्ट सेक की ऐसी-तैसी।'

आठवां बोला—'आर्ट फार लाइफ सेक इज़ द बिग्गेस्ट फ्रॉड इन लिटरेचर।'

फिर बहुत-सी आवाज़ें एक दूसरी में उलझ गईं, 'टुटपूंजियों के एजन्ट, सरमायादारों के कुत्ते—गटर लिटरेचर के वारिस—कम्यूनिस्टों के ढिंढोरची-इम्पीरियलिस्टों के चमचे—सोशलिस्टों के पगड़ी बदल भाई—तुम्हें देख लूंगा—तुझे देख लूंगा—तुम सबको देख लूंगा!'

यह अद्‌भुत् नाटक देखकर बुज़ुर्गों की आंखों में आंसू आ गए। उनमें से एक हाथ जोड़ता हुआ रुंधी आवाज़ में बोला, 'सरस्वती मैया के सुपुत्रो, कुछ तो शर्म करो! इस बरगद की पवित्रता को यूं तो कलंकित न करो? उस ज़हर का असर तो उतर भी गया था, इस ज़हर का असर तो युगों-युगों तक नहीं उतरेगा!'

दूसरे की सिसकी-भरी आवाज़ सुनाई दी, 'अक्ल के अन्धो, दिलों के तारों को ही तोड़ दोगे तो राग-रागनियां किन साज़ों पर झंकृत होंगी?'

तीसरा बुझी आवाज़ में बोला—'क्या इन्हीं करतूतों से बरगद की परम्परा निबाहोगे?'

चौथा आंसू पोंछता हुआ बोला—'क्या इन्हीं लच्छनों से परम्पराएं प्रगति-पथ पर आगे बढ़ेंगी?

पांचवां कह उठा—'मेरे मित्रो! अपने दिल को इतना छोटा न बनाओ कि उसमें चार आंसू भी न समा सकें?'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छठे ने कहा—'प्रेम और सौन्दर्य के राग अलापने वालो, याद रखो कि अगर तुम्हारे चारों ओर करुण-क्रन्दन और हाहाकार मचा हो तो तुम अपने रागों को चीखें बनने से नहीं रोक सकोगे।'

अचानक बरगद आदमी की सी आवाज में सिसक उठा, 'तुम सब ने अपनी-अपनी सुना ली। मैं सदियों से तुम सबकी सुनता आया हूं ! मैंने आज तक अपनी जुबान नहीं खोली, होंठ सिये रखे। मैं सोचता रहा कि मेरे दिल की बात तुम्हारे दिलों के स्वच्छ दर्पण में प्रतिबिम्बित होगी। लेकिन कहां ? इस धूल-भरे दर्पण में धुंधलेपन के अतिरिक्त कुछ भी तो दिखाई नहीं देगा ! आज मेरी भी सुन लो।'

बरगद की आवाज़ सुनकर एक अजीब-सी खामोशी सभा में छा गई। सब एकत्रित कलाकार विस्फारित नेत्रों से बरगद की ओर देखते रहे। अचानक बहुत-सी आवाजें बरगद में से सुनाई देने लगीं, 'मैं अभागिन मां हूं, मेरा बच्चा मेरी आंखों के सामने नेज़ों की नोक पर उछाला गया। मैं बदकिस्मत बाप हूं, मेरी बेटी मेरी आंखों के आगे बेइज़्ज़त की गई, आग में झोंकी गई। मैं करमजली प्रेमिका हूं, मेरा प्रेम मेरे सामने तलवार के घाट उतार दिया गया। मैं लहलहाती फसल हूँ, जिस पर जहर छिड़क दिया गया। मैं अन्धा और अपाहिज हूं मेरी आंखें ऐटमी ज़र्रों ने छीन लीं। मैं टूटा हुआ रहट हूँ, मेरे लोहे से बन्दूकें बना ली गईं। मैं खूबसूरती हूँ, जिसे भूखे दरिंदों ने अपने नाखुनों से नोच डाला। मैं सिंगार हूं, मुझे भेड़ियों की आंखों ने निगल लिया। मैं कल्याण हूं, मेरे हाथ काट दिए गए। मैं सचाई हूं, मैं इन वीरानों में भटक-भटक कर पागल हो गई हूं !'

कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। सब कलाकार चित्रलिखित से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बैठे रहे। फिर एक आवाज़ उस सन्नाटे में गूंज उठी, 'मैं कलाकार हूं। माँ सरस्वती ने मुझे अपने स्नेह और ममता के आंचल की छाया में पाल-पोसकर विष को अमृत बनाने की शक्ति दी है। मां ने अपनी वीणा के तारों को झंकृत कर, मेरे मन के तारों को झिझोड़ा है, मेरे मन को सत्य और सौन्दर्य के जल से पवित्र किया है। यही कारण है कि मैं सदैव युग की जटिलताओं और विषमताओं का विष पी कर युग-देवता का अभिषेक अमृत से करता हूँ। कांटे मुझे छूते ही फूल बन जाते हैं। मैं आंसूओं को समेट-समेट कर उन्हें मुस्कानें बना कर लौटाता हूँ। चीखें मेरे पास आते ही नग़में बन जाती हैं। मैं स्वयं तिल-तिल कर जलता हूं ताकि लोग अन्धकार में भटक न जाएं। जब सारी दुनिया में मानवता फैल जाती है तब मैं लोगों के प्रेममय संगीत को सुन, सम्मोहक नृत्य को देख, मधुर मुस्कानों को निहार अपनी थकन भूल जाता हूं। मैं वही हूं, जिस का दिल लोगों की वेदनाओं को देख छटपटा उठता है। लेकिन मैं आंतड़ियों को जला देने वाली भूख में भी लोगों की वेदना को हरने की धुन में, अपनी भूख की बात भूल, लगातार काग़ज़-कलम लिए छैनी-हथौड़ी लिए, तूलिका रंग लिए, सितार और बांसुरी लिए ज़हर को अमृत बनाता रहता हूं। सरस्वती मैया के वरदान के कारण तलवारों की खनखनाहट में, बमों की गड़गड़ाहट में; गोलियों की सनसनाहट में, जहरीली गैसों की सरसराहट में भी मेरी कलम चलती रहती है, छेनी उकेरती रहती है, तूलिका रंगती रहती है, बांसुरी बजती रहती है। आंखें मूंदते समय में यही चाहता हूं कि मैं इस विशाल वट वृक्ष का नन्हां सा पत्ता बन सकूं, ताकि इस अमर छाया में मेरा भी कुछ हिस्सा हो। इस सतत् प्रवाहित सरिता की एक बूंद बन सकूं ताकि मानव प्रगति की परम्परा निरन्तर अग्रसर होती रहे।'

सभी उपस्थित कलाकारों ने एक दूसरे की ओर देखा। सभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की आंखें छलछला आई थीं, मन के दर्पण की धूल धुल रही थी। सभी अपने-अपने अन्तर में झांक रहे थे कि बरगद की सी परम्परा में उनका स्थान कहां है ? सरिता की सी प्रगति में वे कहीं समाए हुए हैं भी या नहीं ? कहीं गढ़ों का पानी बन कर ही तो नहीं रह गए हैं ? जन-मानस को प्रेम से सींचने की, सत्य से धोने की, सौन्दर्य से निखारने की, करुणा से पखारने की सामर्थ्य उनमें है या नहीं ?

इतने में बरगद के पास से एक अल्हड़ ग्रामीण युवती, जर्जर-से वस्त्र पहने, सिर पर टोकरी उठाए गुज़री। अकस्मात् सब की दृष्टि उस ओर उठ गई। एक ने कहा—'साक्षात् कविता है।' दूसरे ने कहा—'मेरे गीतों की लय है।' तीसरा बोला, "सौन्दर्य प्रतिमा !" चौथा बोला, "शोषिता नारी !' पांचवें ने कहा—'अबला !" छठे ने कहा, 'सभ्यता और संस्कृति को चुनौती।' सातवें ने कहा—'निराश्रिता !' आठवां बोला, 'अपनी ठोकर से राह बनाने में समर्थ।' नौवां बोला, 'सहनशीलता और धैर्य की देवी।' फिर जितने लोग बैठे थे सभी अपनी-अपनी कहते गए।

बरगद से आवाज़ आई—'तुम में से कोई झूठा नहीं है, सभी का अपना-अपना सत्य है लेकिन फिर भी इस सचाई की राह असीम तक चली गई है। अपनी-अपनी सचाई को गढ़ों में मत धकेलो, नदी के जल की तरह प्रवाहित रहने दो ताकि यह अनादि काल से चली आ रही सरिता, अनन्त काल तक अबाध गति से अग्रसर होती रहे, सतत रूपेण मानव मन को प्रक्षालित करती रहे।'

कलाकारों के मन में, बरगद के बोल गूंजते रहे, उनके हृदयों को मथते रहे ! हृदय मन्थन के बाद फिर [illegible] विनिमय होने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बरगद की छांह में बैठे सभी कलाकारों ने सर्वसम्मति से स्वीकृत किया—

संकीर्णता, चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो, उस कला की घातक है जोकि सत्य के असीम छोर तक चली गई है। कलाकार परम्परा का विरोधी नहीं है, अपितु परम्परा को जन-कल्याण की भावना से प्रगतिशील बनाने का इच्छुक है। कलाकार का मन अपने युग का दर्पण है। जब कभी दर्पण पर लोभ और स्वार्थ की धूल छा जाती है तो वह उसे अपने हृदय के आंसुओं से साफ करता है। कलाकार जीवन के किसी भी पहलू को चित्रित क्यों न करे, उसका उद्‌देश्य युग को सौन्दर्य और शिवत्व तक पहुंचाने का होता है। वह मानवता का प्रहरी भी है। असीम आस्था, अटल निष्ठा, अपरिसीम विश्वास उसके सम्बल हैं! आत्मबलिदान और आत्मत्याग उसके सहायक हैं, गहन अनुभूति और अनन्त सहानुभूति उसके सखा हैं। कलाकार अहंकार की बाधाओं को, झूठी प्रशंसा की खाइयों को पार करता हुआ सत्‌पथ पर निरन्तर बढ़ने वाला योद्धा है। सहिष्णुता, प्रेम, धैर्य, करुणा उसके शस्त्र हैं। कलाकार पलों के साज़ पर इन्सानी ज़िन्दगी की सांसों के गीत गाने वाला गायक है। क्योंकि पलों के साज़ कभी नहीं टूटते, ज़िन्दगी कभी नहीं हारती, अतः कलाकार की सांसों के बोल कभी नहीं मरते। वे गीत कभी नहीं थमते, कभी नहीं थमते, अनन्त काल तक मानव की थकन हरते रहते हैं, उसे प्रगति-पथ पर अग्रसर होने के लिए निरन्तर प्रेरित करते रहते हैं।

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनेक कालेर यात्रा आमार

ब्राह्म मुहूर्त में यमुना जी के निर्मल नीर में डुबकी लगा, परिक्रमा के लिए जुगल घाट से दाईं ओर घूमा तो कानों में अत्यन्त मधुर संगीत लहरी गूंज गई, मन को बहुत भीतर तक छू गई। एक बंग प्रदेश की लड़की, श्वेत साधारण सी साड़ी पहने सुमधुर बोल गाती सामने से आ रही थी, 'परेर द्वारे फिरे, शेषे—आसे पथिक आपन देशे– बाहिर भुवन घूरे मेले, अन्तरेर ठाकुर।"

इन पंक्तियों के किताबी अर्थ मैंने कुछ वर्ष पहले रट लिए थे, परन्तु इस गीत में निहित भाव की व्यापकता उस दिन से समझ में आने लगी।

इस अनाम कन्या के माध्यम से ही रवि ठाकुर के विराट् दर्शन हुए, मुझ अकिंचन के अहोभाग्य! कौन थी वह लड़की! कहां से आई थी? मैंने नहीं जाना परन्तु आज भी उसकी छवि भुलाए नहीं भूलती।

ज्यों ज्यों मैं जीवन के दूसरे पन की समाप्ति की ओर दौड़ रहा हूं, त्यों त्यों यह बात मन में ज़ोर पकड़ती जाती है, 'पथिक को अपने द्वार तक पहुंचने के लिए हर-एक अपरिचित द्वार को खटखटाना पड़ता है और अपने अन्तर्तम तक पहुंचने के लिए सभी को बाह्य प्रदेशों में भटकना पड़ता है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज मन में शंका यह उठती है कि आधुनिक युग के मार्ग-दर्शक कौन से उस बंगाली लड़की जैसे अज्ञानी हैं जो इन निरर्थक से शब्दों को हृदय की गहराइयों से गाते रहें और भाव-विभोर हो अपना अमूल्य समय नष्ट करें ? आज के मार्ग दर्शकों ने बाह्य प्रदेशों में भटकने को ही शायद मानव-जीवन का चरम लक्ष्य समझ लिया है। अन्तर्तम तक पहुंचने की इस खड़खड़ाहट और गड़गड़ाहट के युग में, उनके पास फुरसत नहीं है।

उपनिषद् की पवित्र वाणी है 'सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः।' यही यात गुरुबाणी में प्रस्फुटित हुई है, "आप समान सबै जग लेखौं भगतन अधिक डरौं।" लेकिन किसी को उपनिषद् का अमृत पान करने को, गुरुबाणी का स्वाद चखने की फुरसत हो तब न ? गुरु की बात तो शिष्य ही सुन सकता है। यहां समस्या यह आ पड़ी है कि आज के युग में जिधर देखो गुरु ही गुरु दृष्टिगोचर होते हैं, शिष्य तो दिन में लालटेन जला कर देखने पर भी नहीं मिलता। बस गुरुओं में ही ठन गई है। इस ठनाठनी में आदमी अपने भगीरथ प्रयत्नों से इस बार स्वर्ग से प्रलय को धरा पर शीघ्रातिशीघ्र उतार लाने में तत्पर है। ऐसे में मुझे रवि ठाकुर की 'नाव-दुर्घटना' के 'अन्नदा बाबू' की बात अनायास याद हो आती है। 'अन्नदा बाबू', 'नलिनाक्ष' से कहते हैं—

"जहां सभी गुरु हैं, कोई चेला नहीं, उस दल में मिलते मुझे लज्जा जान पड़ती है। ऐसे में शिक्षा देने की होड़ से शिक्षा पाने का अवसर हाथ से जाता रहता है।" इस खड़खड़ाहट और गड़गड़ाहट में शायद अवसर का हाथ से जाते रहना ही हमारे अज्ञान के कारण हमारे लिए अवसर का सदुपयोग बनता जा रहा है।

शास्त्रों में गुरु के लक्षणों में से एक लक्षण है, गुरु का अहंकार-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहित होना। 'योगेन्द्र' के लाख व्यंग्य वाण छोड़ने पर भी 'हेमनलिनी' 'नलिनाक्ष' की तरह साधना मार्ग पर चल निकली। 'नलिनाक्ष' ने न तो अपने गुरुपने के इश्तिहार चिपकाए और न ही घंटी वाला आदमी किराये पर लेकर सिनेमा वालों की तरह अपने गुरु होने की मुनादी कराई। कहा उसने यही—

"जो हमारे हाथ में आता है उसे भी हम पूरी तरह प्राप्त नहीं करते। जब त्याग द्वारा उसे हम पाते हैं तब यथार्थ में वह हमारे हृदय का धन बन जाता है।"

और लोग तो लोभ द्वारा पाने में विश्वास रखते ही थे, हम भी अन्धाधुन्ध उन्हीं के पीछे भाग निकले हैं।

'शरत् बाबू' ने 'शेष प्रश्न' में बहुत पते की बात कही है। 'शेष प्रश्न' के 'आशु बाबू' कहते हैं—

"अनुकरण से मुक्ति नहीं मिलती, मुक्ति मिलती है ज्ञान से।" अन्धानुकरण और ज्ञान द्वारा निर्धारित पथ का बाह्य रूप एक सा रहने से कुछ देर के लिए मरीचिका में आनन्दप्राप्ति का भ्रम हो सकता है, परन्तु यह भी अटल सत्य है कि मरीचिका की चरम परिणति भटकन और नैराश्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

रवि ठाकुर ने 'व्यक्ति का विश्व से सम्बन्ध' लेख में बहुत महत्त्व पूर्ण प्रश्नों को सुलझाया है। इस लेख की उत्तरोक्त पंक्तियां मेरे मस्तिष्क के झाड़-झंखाड़ों में बुरी तरह फंस गई हैं।

"पाश्चात्यों को प्रकृति पर विजय पाने का अहंकार है। पश्चिम की यह मनोभावना उनकी शहरी दीवारों में विकसित सभ्यता की देन है। भारत की विचारधारा इससे भिन्न है। उसके अनुसार प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और मनुष्य एक ही व्यापक सत्य के अंग हैं।" और "विश्व-भर में समता की भावना रखना भारत के लिए केवल काल्पनिक आदर्श नहीं रहा, बल्कि इस समत्व को अपने विचारों व क्रियात्मक जीवन में प्रयोग में लाना भारतीय आदर्श रहा है।"

आज हमें देखना यह है कि हम अपने आदर्शों के आलोक में निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं या दूसरों के आदर्शों की भूलभुलैय्या में फंसते जा रहे हैं। हमारी राह है त्याग द्वारा पाने की। यदि हम भी लोभ द्वारा पाने की धुन में इस अद्भुत नृत्य में नाचने लगे तो चाँद तक पहुंचने वाले रॉकेट को पाताल में धंसते विलम्ब नहीं होगा।

लोभ द्वारा कुबेर बनने के मूल में होता है अविश्वास। अविश्वास की दीमक पलक झपकते ही सैकड़ों हज़ारों के नोटों को चाट जाती है। 'नावदुर्घटना' में 'अन्नदा बाबू' 'नलिनाक्ष' से कहते हैं, "जो लोग दाता हैं उन्हें यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि मूल धन नष्ट न होने पाए, नहीं तो दान करने की शक्ति चली जाएगी।" हमारा मूल धन है, विश्वास, सहिष्णुता, धैर्य, मानसिक सन्तुलन, निष्कामता, प्रेम और करुणा। अविश्वास की दीमक ने इस धन को विक्षिप्तता, अधैर्य, मानसिक असन्तुलन, लिप्तता, लोलुपता और घृणा में परिवर्तित करना प्रारम्भ कर दिया है।

रवि ठाकुर ने 'नाव-दुर्घटना' में 'अक्षय' जैसे प्राणी से भी बहुत बड़ा सत्य कहलवाया है। 'अक्षय', 'चक्रवर्ती चाचा' से कहता है, "भगवान् शायद अच्छे लोगों की ही सब से अधिक परीक्षा लेते हैं।"

आज सभी देशों की आंखें हम पर हैं कि देखें यह भारत, परीक्षा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भवन में बैठ पेपर खाली छोड़ कर उठता है या कुछ नया रेकार्ड कायम करता है।

तोता-रटन्त से काम नहीं चलने का। तोता-रटन्त में एक बार भूले कि सब का सब सफाया। इस बार भगवान्, अच्छे लोगों की खूब कठिन परीक्षा लेकर उन्हें देवत्व के आसन पर बैठाने की सोच रहे हैं।

दुनिया में नर-संहार की तैयारियां बड़ी धूमधाम से हो रही हैं। अणु और उद्‌जन बमों की आतिशबाजियां छोड़ कर शैतानों की बरातें खुशियां मनाने की सोच रही हैं। स्वार्थान्ध और मदान्ध शक्तियां मानव- इतिहास को पुनः पत्थर और धातु युग पर ला खड़ा करने के लिए कटिबद्ध हैं। अन्तर्राष्ट्रीय आंधी-तूफान के झोंके विभिन्न देशों में फुंकारते हुए फैल रहे हैं। 'आमार घरा पेने या दिबे पण—देह ता मोर साथीटिरे' को आज तक हमने बहुत रटा है, अब इसे जीवन में उतारने की घड़ी आ पहुंची है। मुट्ठी भर हड्डियों का तेजपुंज, बापू भी आज हमने अपने पटाखों की सनक में खो दिया है, नहीं तो वही रवि ठाकुर का "आपन बुकेर पांजर ज्वालिये निये—एकला जलो रे—एकला चलो रे—" गुनगुनाता हुआ हमारी उंगली पकड़े इस मेघाच्छन्न रात्रि में, प्रबल प्रभंजन में, गहन अन्धकार में सत्य के असीम छोर की ओर हमें ले निकलता।

ऐसे में रवि बाबू की इस सुशिक्षा को हृदयस्थ करके अग्नि-परीक्षा के लिए कटिबद्ध होना चाहिये। "विज्ञान की सहायता से हमें प्रकृति के नियमों का ज्ञान अधिक हो गया है, अतः हम अधिक शक्तिशाली हो गए हैं। विश्वशक्ति से हमारी समीपता बढ़ गई है। विज्ञान ने हमें विश्वात्मा को उसके भौतिक रूप में देखने का भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नया दृष्टिकोण दिया है, इसीलिए हम दुःख, दारिद्रय रोग और मृत्यु पर भी विजय पाने का उद्योग कर रहे हैं।" और "जब हमारे अन्तर का व्यक्ति, मानव के विश्व व्यक्तित्व से विद्रोह करता है तो हम क्षुद्र हो जाते हैं और कष्ट उठाते हैं। इस स्थिति में हमारी सफलताएं भी असफलताओं में बदल जाती हैं। अपनी वासनाओं की तृप्ति ही हमें प्यासा और लाचार बना देती है।"

मेरे मस्तिष्क की बंजर भूमि में, ईश्वर कृपा से रवि बाबू की एक और बात भी उग आई है। वह भी मुझे आपस में बांट लेने दीजिए—'सभ्यता की परख यह नहीं होनी चाहिए कि उसने कितना शक्तिसंग्रह किया है, बल्कि यह कि उसने मानव-प्रेम को विकसित करने के मार्ग में कितना कार्य किया है। प्राचीन सभ्यताओं का अन्त जब भी हुआ इसी कारण से हुआ कि उन्होंने मनुष्य का मूल्य घटा दिया था, मनुष्य ने क्रूरता अपना ली थी। जब कोई राष्ट्र या उसका प्रभावशाली जन-समूह मनुष्य को अपने शक्ति-संग्रह का उपकरण मात्र समझना शुरु कर दे तभी वह मनुष्य की महानता पर कुठाराघात करता है। सभ्यता मनुष्यभक्षी राक्षसी वृत्तियों के आधार पर खड़ी नहीं रह सकती।"

यह जो कुछ मैंने कहा है इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि मुझे आज विश्व में चहुं ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दे रहा है या मुझे स्वर्णिम प्रभात में सन्देह है। कहना मैं यही चाहता हूं कि इन्हीं मेघाच्छन्न रात्रियों, गहन अन्धकारों और प्रबल प्रभंजनों में से होती हुई ही स्वर्णिम प्रभात तक राह निकल गई है। अपनी ओर से कुछ न कह कर अपनी सफाई में 'नाव दुर्घटना' के 'नलिनाक्ष' की बात ही दोहराना चाहता हूं. "संसार में मैं बिल्कुल भिक्षुक की भाँति आया था। बड़ी साधना से, अनेक लोगों की अनुकूलता से धीरे धीरे यह शरीर तैयार हुआ है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरा विश्वास भी रविठाकुर जैसी महान् आत्माओं की करुणा वृष्टि में ही पनपा फूला है, वरन् इस मन की ऊसर भूमि में कुछ भी पनपने की गुन्जाइश कहां थी ? रवि बाबू को हृदय में सहेज सहेज कर ही मेरा विश्वास अडिग, अजेय बना है। 'नलिनाक्ष' 'हेमनलिनी' से कहता है, "विघ्न हम लोगों के हृदय की समस्त शक्ति को जगाने के लिए ही उपस्थित होता है। इससे आप हताश न हों।" 'अन्नदा बाबू' से 'नलिनाक्ष' कहता है, "सत्य को प्रकाशित करना ही सत्य की चरम शिक्षा है।"

ये विघ्न-बाधाएं, विभीषिकाएं, विनाश की घटाएं भी हमें सत्पथ पर अग्रसर होने से नहीं रोक सकतीं, विश्वास को डिगा नहीं सकतीं यदि हम रवि ठाकुर के इस सत्य को आत्मसात् कर लें, "मृत्यु को जीवन से अलग करके जब हम देखते हैं तभी हम इसके भयानक रूप से भय खाते हैं। मात्र मृत्यु ही जीवन का सत्य नहीं है।"

अपने चहुं ओर हो रहे जघन्य पाप, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, लोभ, और लिप्सा के उन्मादक नृत्य को देख कर; रवि ठाकुर के 'पाप की समस्या' शीर्षक से लिखे लेख की पंक्तियों को मनोगत कर लेना चाहिये—

"संसार के प्रवाह की भी मर्यादाएं हैं, किनारे हैं। उनके बिना इसका अस्तित्व ही न होता ; किन्तु संसार का सत्य इसकी अवरोधक मर्यादाओं में नहीं, अपितु उस गति में है जो पूर्णता की ओर प्रवाहित है। संसार का चमत्कार कष्ट और बाधाएं नहीं, अपितु सुव्यवस्था, सौन्दर्य, शिवत्व और प्रेम की चिरन्तनता है। जो अपूर्ण प्रतीत होता है वह पूर्ण का ही प्रस्फुटन है।"

इन कण्टकाकीर्ण पगडण्डियों, दोपहर की बरसती आग, और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लहूलुहान तलवों को देख कर पलायन का प्रश्रय लेने पर क्षणिक मरीचिका की भ्रान्ति मिले तो मिले, उससे महान् अन्य उपलब्धि होना असम्भव है।

रवि बाबू ऐसे ही कठिन क्षणों के, दुर्गम पथ को सहल बनाने के लिए हमें सम्बल दे गए हैं—"प्रखर रविर तापे न हय शुष्क गगन कांपे···मधुर सुरे बाजवे तोर डाकि।"

चलना ही है तो फिर रोते सिसकते हुए, चीखते चिल्लाते हुए क्यों चलें ? मधुर वंशी में तानें फूँकते हुए क्यों न चलें ? परन्तु वंशी की सुमधुर तानों के लिए वंशी बनें तब न ? वंशी जैसा सुरीला साज़ मुझे अन्य कोई नहीं लगता। वंशी इसलिए सुरीली है, क्योंकि एकदम त्यागी है, इस साज़ में अपने पास संचित करके रखने के लिए कहीं कोई गुन्जाइश नहीं है। अगर वंशी ठोस हो जाय, अपने को भरने का लोभ उसमें आ बसे तो फिर इस सुरीले साज़ को पोलीस कॉन्स्टेबल के हाथ का डण्डा बनते विलम्ब नहीं होता।

मुसीबत यह आ पड़ी है कि हम ठोस डण्डे से वंशी के सुमधुर लयों की कामना करते हैं। किसी को एक कण देकर महादानी बनने का स्वांग रचते हैं। यह कहां जानते हैं कि वही कण, स्वर्ण-कण बन कर अपनी झोली में लौटने वाला है। हमारे लोभी हृदय से तो कुछ भी छोड़ते नहीं बनता। रटते हैं 'आमार सकल शून्य करे।' कर्म में प्रकट होता है इससे विपरीत, अतः परिणाम भी तदनुरूप प्रकट होते हैं। यथासमय लोभ की झोली उलट देना ही श्रेयस्कर है ताकि वही त्याग की अतुल राशि बन कर हम तक लौट आए।

"तखन कांदि चोखेर जले टूटि नयन भरे।
तोमाय केन दिई नि आमार सकल शून्य करे"!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घृणा-त्याग और प्रेम-संचय करने की आवश्यकता है। प्रेम में लाभ हानि बराबर हो जाते हैं। हानि कब लाभ बन जाती है हम जान भी नहीं पाते। ऐसे लाभ के विराट् दर्शन करते ही आत्मा अघा जाती है।

रवि बाबू की अन्य उत्कृष्ट कृतियों को एकदम भूल बार-बार 'नाव-दुर्घटना' की चर्चा मैंने जान बूझ कर ही की है। विश्व का द्वितीय महायुद्ध मेरे मस्तिष्क में रवि ठाकुर की 'नाव-दुर्घटना' की तरह ही अंकित है। यदि हम 'रमेश', 'हेमनलिनी', 'नलिनाक्ष', 'कमला', 'अन्नदा बाबू' और 'चक्रवर्ती चाचा' की तरह अपने चहुं ओर के वातावरण से प्रभावित होते हुए भी कर्मनिष्ठ, सरलहृदय, पर-हिताकांक्षी और दृढ़व्रती बन सकें तो इस 'नावदुर्घटना' के बाद, विश्व में प्रेम, आनन्द और सौहार्द का निर्मल, शीतल, समीर प्रवाहित होते विलम्ब नहीं होगा। हम तो अभी 'अक्षय' भी नहीं बन पाए हैं; अतः गति को अधिक सन्तुलित, अधिक तीव्र करने की नितान्त आवश्यकता है। हमारे आलस्य के कारण, हमारी भीरुता और पलायनवादी प्रवृत्तियों के कारण, हमारे लोभ और स्वार्थ के कारण कहीं ऐसा न हो कि 'नाव-दुर्घटना' का 'नलिनाक्ष', 'कमला' को ढूंढता ढूंढता पागल हो जाए, 'रमेश', 'हेमनलिनी' को खण्डहरों और बियाबानों में पुकारता फिरे और 'हेमनलिनी' की चिता की राख उसकी आंखों में भर जाए। 'अन्नदा बाबू' और 'क्षेमङ्करी' की आंखें 'हेमनलिनी' और 'नलिनाक्ष' को देखती देखती पथरा जाएं, लेकिन वे कभी घर न लौट सकें, कभी न लौट सकें !

'रमेश' ने 'हेमनलिनी' से एक बात कही थी, "तुम मुझ पर अविश्वास न करना।" रवि ठाकुर की अमरता की छांह में बैठ कर हम यदि विश्व से कह पाएं, "तुम भारत पर अविश्वास न करना"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो फिर राक्षसी शक्तियों की हिम्मत कहां कि मानवता के शान्ति-निकेतन से शान्ति को बाहर धकेल सकें ?

रवि ठाकुर की अमरता की पुण्य स्मृति के क्षणों में सत्य के असीम छोर तक चली गई राह पर बढ़ते हुए, आइये फिर एक बार कहें—

'चित्त जेथा भय शून्य—उच्च जेथा शिर
ज्ञान जेथा मुक्त—भारतेर सेई स्वर्गे करो जागरित ।''

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्लान्त पथिक का सम्बल

सन्तों और मनीषियों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस प्रकार जीवन-क्रम को निर्धारित किया है ताकि व्यष्टि और समष्टि मानव प्रगति की अनन्त यात्रा पर, सन्तुलित मन, प्रखर मस्तिष्क और सजग दृष्टि से दिशा ज्ञान करते हुए उन लक्ष्यों तक पहुंचें जो आज के आदर्श हैं और उन आदर्शों की नई मर्यादाएं स्थापित करें। पहले दो महा-युद्धों की विध्वंस लीला ने और तीसरे विश्वयुद्ध के भय ने, जिसने व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों के मन को बुरी तरह ग्रस लिया है, मानव यात्रा की मंज़िलों को धुंधला सा दिया है। मन की विक्षिप्ता-वस्था में धर्म और मोक्ष की बात बिसर गई है, धर्म विहीन अर्थ और मोक्ष विहीन काम का अखण्ड कीर्तन हो रहा है और दिशा भ्रम को हम दिशा दृष्टि समझ बैठे हैं। अर्थ और काम के कोलाहलमय वातावरण में सदाचार की आवाज़ कुछ इस तरह डूब गई है कि सदाचार की ओट में; कूटनीति और स्वार्थ, दम्भ और अहंकार, लोलुपता और सत्ताकांक्षा मनमानी करने का सुअवसर पा गए हैं।

मानव प्रगति सदाचार के खरे खोटेपन को परखने की सब से बड़ी कसौटी है। यदि मानव, प्रगति के पथ पर अग्रसर हो तो समझना चाहिए कि सदाचार का पलड़ा भारी है, अन्यथा सदाचार के छलावे को समझने का सुप्रयत्न होना चाहिये। आज के युग में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रगति और प्रतिक्रिया आपस में यूं उलझ गई हैं कि प्रगति का रूप तक पहचानना कठिन हो गया है। मानव, प्रगति कर रहा है अथवा प्रतिगामी बन रहा है इसका लेखा जोखा करने से पहले प्रगति के स्वरूप को पहचान लेना आवश्यक है। मैगाटन बमों के परीक्षण, कीटाणु युद्धों के आविष्कार, गड़े मुर्दों की उखाड़ पछाड़, लुमुम्बाओं की हत्याएं और गुटों के स्वार्थों को सचाई पर ठोंसने की कूटनीतिक चालें, सभी कुछ प्रगति के नाम पर हो रहा है।

जितना बड़ा सत्य यह है कि व्यक्ति अपने युग के सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता रहता है उतना ही बड़ा सत्य यह भी है कि व्यक्ति की गतिविधियों का भी प्रतिबिम्ब समाज पर पड़ता रहता है। यदि व्यक्ति अच्छा है तो समाज भी अच्छाई की ओर अग्रसर अवश्य होगा। हमने कितने कारखाने बढ़ा लिए अथवा कितने सैनिक विमान तैयार कर लिए, कितना उत्पादन बढ़ा लिया अथवा कितने समुद्री बेड़े बना लिए इन प्रमापों से मनुष्य के जीवन की सुविधाओं को नाप लेना शायद सम्भव हो, परन्तु प्रगति को अथवा अच्छाई को नाप लेना सम्भव नहीं है।

प्रगति की पहचान यह है कि मानव कितना निर्भय बना, कितना परोपकारी बना, कितना प्रेममय बना, कितना पवित्रहृदय बना। इस विश्व-युद्ध का उद्गम; जिसके काले बादल संसार पर मंडला रहे हैं और कभी कभार कोई बदली कोरिया या हंगरी पर अफ्रीका या जर्मनी पर बरस जाती है, ऐटम और हाइड्रोजन बमों के कारखाने, लड़ाकू विमानों और पनडुब्बियों के दस्ते नहीं है, अपितु भयग्रस्त, स्वार्थलिप्त मानव-मन है। इतिहास साक्षी है कि धर्म के नाम पर जब जनसंहार हुआ तो ऐटम और हाइड्रोजन नहीं थे, साम्प्रदायिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नरमेधों में लोगों ने छुरों और तलवारों से ही काम चला लिया था। यदि मानव स्वार्थी बना रहा तो वह लाठी भालों से ही विनाश का महाताण्डव मचाने की क्षमता रखता है। सदाचार की पहचान यह है कि उसके प्रभाव से मानव-मन भयमुक्त और त्यागयुक्त हो जाए।

यह ठीक है कि रोटी, कपड़ा और मकान की समस्याएं महत्वपूर्ण हैं। अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव में मानव मन विक्षिप्त हो कर, क्रोध और हिंसा को, ईर्षा और घृणा को, छल और कपट को गले लगाना सीख लेता है, अतः ये अनिवार्य आवश्यक-ताएं व्यक्ति की प्रगति को दूषित न करें इसके लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। परन्तु मौजूदा उथल पुथल ने, जो साम्राज्यवादी और साम्यवादी दोनों ही खेमों में दृष्टिगोचर हो रही है, इस बात को भी पुनः सिद्ध कर दिया है कि अनिवार्य आवश्यकताओं की समस्याओं के सुलझ जाने पर भी व्यक्ति स्वार्थी और ईर्ष्यालु बना रह सकता है। रोटी, कपड़ा और मकान की प्राप्ति के पश्चात् भी सदाचार के अभाव में मानव प्रगति की धारा शुष्क और सुलगते मरुस्थलों में विलुप्त हो सकती है। अतः सदाचार वह है जिस से मानव मूल्यों की सम्पदा में दैनंदिन निरन्तर वृद्धि होती रहे ताकि मानव भर पेट खाने के बाद संचित करने की बात न सोचे, अपितु स्वयं भूखा रह कर भी रन्तिदेव की तरह अपना भोजन अतिथि के सम्मुख परोस सके।

शाब्दिक अर्थ भी लें तो सत्यपूर्ण आचार ही सदाचार कहलाने का अधिकारी है। सत्य की पहचान क्या है? जो सौन्दर्य से ओत-प्रोत हो। सौन्दर्य क्या है? जिसमें शिवत्व के गुण हों। सत्य तभी विकसित होता है जब सौन्दर्य और शिवत्व को साथ लेकर चलता है। हम किसी भी कार्य को करने से पहले मन में झांक कर देखें कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्या उससे सौन्दर्य और शिवत्व का रूप निखरता है ? यदि ऐसा सोचेंगे तो नरमेधों की कहानी को जन-सेवा की कहानी में बदलते देर ही कितनी लगेगी ? यदि हम ने इस प्रकार सोचने की आदत डाल ली तो झट हमारा मन कहेगा कि अबलाओं का करुण क्रन्दन, झूठे धर्म के नाम पर शिशुओं और वृद्धों की हत्याएं, राष्ट्रोत्थान के नाम पर पड़ोसी राष्ट्रों को दास बनाने की प्रवृत्ति, विशेष दर्शन को फैलाने के लोभ में पड़ोसी देशों की जनता में असन्तोष फैलाने की कूटनीतिक चालें, स्वतन्त्र चिन्तन को स्वार्थवश पैरों तले रोंदने की इच्छा, दूसरे देशवासियों को भूखे मरते देख, लोभ में फंस, अपने देश के अनाज को जला देने की मनोवृत्ति, मुक्ति के लिए प्रयत्न करते लोगों पर झूठे दोषारोपण करने की हीन भावना, वासनापूर्ति के लिए किसी अबला का प्राणहीन वस्तु की तरह प्रयोग, ये सभी बातें सौन्दर्य को नष्ट करती हैं, शिवत्व को मिटाती हैं। यह ज्ञान होते ही इस सत्य, सौन्दर्य और शिवत्व की रक्षा के लिए आप जो भी कार्य करेंगे वे सदाचार की परम्परा को ही आगे बढ़ाएंगे।

यह दृष्टि कि एक बार तो येन-केन-प्रकारेण अन्याय और अत्याचार, हिंसा और अनाचार को नष्ट कर दिया जाए भले ही उसके लिए हमें कुछ समय के लिए मानव मूल्यों को क्यों न छोड़ना पड़े, समय मिलते ही हम मानव मूल्यों की सम्पदा को, सदाचार के खरे सिक्कों को बटोर लेंगे; स्वस्थ्य दृष्टि नहीं कही जा सकती। ऐसा सोचते समय अनजाने और अनचाहे, हमारे मन के अंधेरे कोनों में छिपे स्वार्थ और लोभ, घृणा और द्वेष ही हमारी सत्प्रवृत्तियों के विरुद्ध गोरिल्ला लड़ाई कर रहे होते हैं। सदाचार को अपनाते समय इन अन्तर में छिपे शत्रुओं को पहचान लेना ज़रूरी है।

जब हम कूटनीति को कूटनीति से और हिंसा को हिंसा से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पछाड़ने की योजनाएं बना रहे होते हैं, तो अनजाने ही, उन्हीं बुराईयों को मन में प्रश्रय देते चले जाते हैं जिन के विरुद्ध हमने संघर्ष करने की प्रतिज्ञा की होती है। जब हम यह कहते हैं कि हम तो अहिंसावादी और न्यायप्रिय हैं, परन्तु दूसरे के हाथ में तलवार देख कर हमें भी बरछा उठाना पड़ा है तो उस समय हम उस बन्दर की या भालू की सी हास्यास्पद स्थिति में होते हैं जिस की डोर मदारी के हाथ में होती है और वह कुछ पैसों के या एक मुट्ठी आटे के लोभ में उन्हें गली गली, बाज़ार बाज़ार मनचाहे ढंग से नचाता फिरता है। निस्सन्देह ऐसी हास्यास्पद स्थिति में हमें सदाचार का भ्रम भले ही हो, परन्तु सदाचार की प्राप्ति नहीं हो सकती। अहिंसा को, जिसे सदाचार को अपनाने के लिए जीवन में ग्रहण करना आवश्यक है, निर्भय और निस्वार्थी हो कर ही ग्रहण किया जा सकता है। कायर बन कर अहिंसा की ओट में पलायनवादी प्रवृत्तियों को ही प्रश्रय मिलता है और अन्ततोगत्वा सदाचार की अमूल्य सम्पदा से हाथ धोने पड़ते हैं।

मार्क्सवादी दर्शन ने यह कह कर कि यदि शोषण करना अन्याय है तो शोषण सहन करना महापाप है, विश्व को नई दृष्टि दी है। यह बात कहने सुनने में जितनी सरल दिखाई देती है, क्रियात्मक जीवन में इतनी सुगम नहीं है। जिस प्रकार समाज में शोषक और शोषित दो वर्ग दिखाई देते हैं ठीक उसी प्रकार हमारे अन्तर में भी शोषक और शोषित का निरन्तर संघर्ष चल रहा है। जैसे श्रम-शक्ति का शोषण करने वाली, स्वार्थी, स्वेच्छाचारी, लोलुप और राज्यशक्ति के मद में चूर मनमानी करने वाली शक्तियों को हम शोषक कहते हैं, ठीक उसी प्रकार हमारे मानवीय मूल्यों का गला घोंटने वाली मन के अन्धेरे में छिपी शक्तियां भी शोषक हैं। बाहर की लड़ाई में हम शोषकवर्ग को अत्याचारी कह कर शोषित सर्वहारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का साथ दिए जाते हैं, परन्तु अपने अन्दर की लड़ाई में अज्ञानता के कारण शोषक शक्तियों का साथ देते हैं। इस बेमेल संघर्ष का परिणाम यह निकलता है कि शोषित ही शोषक बन जाता है और हम सिर तोड़ परिश्रम के बाद हाथ लगी असफलता को देख सिर धुनने बैठ जाते हैं, निरुत्साही हो जाते हैं। सदाचार, हमारे हृदय में स्थित प्रेम, स्नेह, विश्वास, त्याग और निर्भयता का; प्रतिपल जिनका शोषण—क्रोध, घृणा, अविश्वास, लोभ और सन्देह द्वारा हो रहा है; सब से बड़ा रक्षक है।

यदि हमारे अन्तर और बाह्य के संघर्ष की गति और लय अनुकूल हो जाए, इस अन्तर और बाह्य के संघर्ष में प्रतिकूलता न रहे तो निश्चय ही हम उन आदर्शों को पा सकते हैं जो आज हमें इस अन्तर और बाह्य की प्रतिकूलता के कारण, अप्राप्य दिखाई देते हैं। यदि हम शान्ति और प्रगति के इच्छुक हैं तो यह देखना आवश्यक है कि हम कार्लमार्क्स के दर्शन को सदाचार की मरीचिकाओं में भटक कर भुला रहे हैं या सदाचार की सहायता से उस दर्शन में नई कड़ियां जोड़ते हुए, उसे अपने देश की आत्मा में आत्मसात् करते हुए कर्मक्षेत्र में मानव कल्याणार्थ अपना रहे हैं।

इस देश की माटी में अद्भुत क्षमता है, पारस के से गुण हैं इसमें। इसे प्रत्येक को अपने स्पर्श से खरा बनाना आता है। यह माटी जिस में लोट कर राम ने मर्यादा पुरुषोत्तम बन कर आदर्शों की स्थापना की है, कृष्ण कन्हैया ने बांसुरी में तान फूंक कर अधर्म का नाश किया है, कपिल और पतञ्जलि ने दर्शनशास्त्रों से जन-मानस को प्रक्षालित किया है, महावीर और बुद्ध ने अहिंसा की स्वर-लहरियां उन्मुक्त वायु में बिखेरी हैं, गुरुदेव और गांधी ने परम्पराओं को प्रगति की ओर विकसित किया है, बड़ी स्नेहशीला, करुणामयी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और प्रेममयी हैं। समय-समय पर देश विदेश से विभिन्न दर्शन, विभिन्न दृष्टिकोण यहां पहुंचते रहे। इस माटी की महानता देख इसमें लोटते रहे। इसने किसी को पराया कह कर दुत्कारा नहीं। सब को अपने परस से पवित्र किया, उज्ज्वल बना कर अपने आंचल में समेट लिया। इसके स्पर्श से जो सत्य, सुन्दर और शिव बनता रहा वह अमर होता गया, जो असत्य, असुन्दर और अशिव था वह भस्मासुर का सा नाच नाच कर स्वयं मरता रहा। और यह पवित्र और प्रेममयी माटी वात्सल्यमयी मां की तरह, उस 'सत्यम्' 'शिवम्' 'सुन्दरम्' को आने वाली सन्तानों के मन में सदाचार का अमृत बना कर बरसाती रही, ताकि इस धरा की सन्तानें गहन अन्धकार में दीपक बनना सीख लें, आंधियों और बौछारों में अजेय मुस्कान के साथ मंज़िलों की ओर बढ़ती रहें, ताकि मानव प्रगति की अनन्त यात्रा कभी न रुके। सत्पथ के राही भूलभुलैयों के आकर्षक जालों से निकल कर सत्य के विकास में निरन्तर योगदान देते रहें।

इसमें सन्देह नहीं कि आज का युग अपनी अन्धाधुन्ध गति के कारण मरीचिकाओं में उलझता है, बार-बार ठोकरें खाता है, बार-बार गिरता है, लेकिन यह भी याद रखने की बात है कि उस महाशक्ति ने मनु पुत्र को धरा पर भेजते समय वरदान दिया था—"तू हर मरीचिका में से नए सत्य को खोजेगा, तेरी हर ठोकर नया वरदान बनेगी, तू जहां गिरेगा, वहीं से संभल कर फिर आगे बढ़ेगा और एक दिन देवत्व के उच्चतम आदर्शों को प्राप्त करके अपने अथक प्रयत्नों से अपनी पृथिवी पर स्वर्ग उतार लाएगा।" मनु पुत्र ने घबरा कर कहा था, "मैं त्रुटियों का भण्डार हूं, जगह जगह ठोकरें खाकर गिरना मेरी कमज़ोरी है। कहीं ठोकरें खाकर गिरते-गिरते ही मेरा जीवन निश्शेष न हो जाए?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाशक्ति की आंखों में करुणाश्रु छलक आए थे। उसने मनु-पुत्र के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा था, "घबरा मत पगले ! तुझे सदाचार का वरदान जो दे रही हूं। यही तुझे एक दिन विजयी बनाएगा। यही तुझ क्लान्त पथिक का सम्बल बनेगा।"

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बनते-मिटते दायरों की धूल अटी तस्वीरें

इतिहासज्ञों ने मानव जाति के क्रमिक विकास को योजनाबद्ध तरीके से सहेजने का प्रयत्न किया है, कवियों ने कल्पना द्वारा मानव मन में संचरित भावनाओं के उच्चतम शिखरों को छूने का प्रयास किया है, कथा शिल्पियों ने यथार्थ की भूमि से पात्र उठा कर ऐसे चित्र आंक दिए हैं जिन्हें देख आंखें पलक झपकना तक भूल जाएं, लेकिन जीवन क्या कभी सीमाओं में बंधा है ? प्रतिपल गतिमय, नित नूतन, सतत प्रवाहित, निरन्तर विकसित जीवन को कितने भी मज़बूत घेरों में बांधने का प्रयत्न कीजिये, वह तो सभी घेरों को पार करता हुआ असीम की ओर बढ़ता रहता है, क्योंकि यदि जीवन थम जाए तो उस नियन्ता की सृष्टि सौन्दर्यमयी न रहे, सत्य उससे रूठ कर भाग जाये, शिवत्व की आंखें पथरा जाएं। व्यक्ति यह भूल जाता है कि काल के सतत प्रवाह में कुछ क्षण उसके हिस्से में आए हैं, निरन्तर प्रवाहित जीवन में उसका अस्तित्व क्षणभंगुर है, अहंकार में सिर उठाकर कहता है, "मैंने समय को बांध लिया है।" काल की आंधी उसे अपने में समेटती हुई कहती है, "निश्चिन्त हो कर सो ताकि तू सोए तो नया जागे, नया जागे तो जीवन की अजस्र धारा न रुके।"

जीवन को नहर के किनारों में बहना नहीं आता। वह उस नदी की तरह बहता है जो अपने हर वेग के साथ एक किनारे को काटती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गिराती और दूसरे को बनाती संवारती आगे बढ़ती है। नदी का पाट बदलता रहता है उसकी गतिमयता बनी रहती है। फिर लेखा जोखा मिलाने वाले विद्वान् अपने अपने अनुसंधानों से पता लगाते हैं कि आज यहाँ बहने वाली नदी आज से सौ साल या हज़ार साल पहले इस जगह से इतनी दूर बह रही थी। आप हिसाब लगाते रहिये, जो बह गया है, वह लौट कर आने वाला नहीं है और जो अब बह रहा है वह रुकने का नहीं है। हां, यदि पहला न बहता तो आज हमारा अस्तित्व भी न होता।

यह बात मेरी अनुभव जनित है, अतः निस्संकोच कह रहा हूं क्योंकि कलाकार को यह शाप या वरदान मिला होता है कि वह केवल अनुभूत सत्य को ही अभिव्यक्त करे। सामाजिक दृष्टि से बढ़ते हुए उद्योगीकरण और संस्कृति के प्रजातन्त्रीकरण के कारण पारिवारिक जीवन की वर्तमान परिधियां बड़ी तीव्रगति से चरमरा कर टूट रही हैं। आर्थिकक्षेत्र में आत्मनिर्भर हो जाने के पश्चात् नारी में एक विवाहशील होने की सम्भावना पुरुष की अपेक्षा अधिक नहीं। समय की धारा बह रही है, स्त्रियां आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में पुरुष के समकक्ष आ खड़ी हैं; अतः मौजूदा पारिवारिक ढांचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन अवश्यंभावी हैं।

मेरे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि जो कुछ हो रहा है वह अनर्थ का सूचक है और हम सब अनिवार्य परिवर्तनों के विरुद्ध कमर कस के खड़े हो जाएं। कहना मैं यही चाहता हूं कि युग की धारा को रोकना स्वस्थ चिन्तन का प्रतीक नहीं है, आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने संकुचित दृष्टिकोण को आधुनिक परिवर्तनों के संदर्भ में विशाल बनाना सीख लें ताकि भौतिक परिवर्तनों और रुढ़िग्रस्त दृष्टिकोण में सामञ्जस्य स्थापित किया जा सके। यदि हम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाहर से बदलते रहे; क्योंकि भौतिक परिवर्तनों के प्रभाव से बचना असम्भव सा है, और भीतर से वही पुरातन बने रहे तो कहीं ऐसा न हो कि हमारी विक्षिप्तता और उन्माद हमें जीवन की धारा से काट कर परे फेंक दें।

स्वस्थ चिन्तन के आधार पर दृष्टिकोण को तभी विशाल बनाया जा सकता है जब हम इतिहास के परिप्रेक्ष्य में मानव जाति के क्रमिक विकास को पढ़ना सीख जाएं। जो अब है, उसे ही चिरन्तन समझ कर उसके मोह में न जकड़े रहें, अपितु यह जान लें कि जो अब है, वह अपने से पहले का समुन्नत स्वरूप है और इसे यदि जकड़े रहेंगे तो जो इससे अधिक श्रेष्ठ है उस तक पहुंचने से वंचित रह जाएंगे। इतिहास के परिप्रेक्ष्य में अपने को समझने की बात कहते समय एक और बात मन में बिजली की तरह कौंध जाती है।

इतिहास क्या अपरिवर्तनीय है? मेरा मन इस बात को नहीं मानता। अपने समक्ष ही हम इतिहास को बदलता हुआ देख रहें हैं। आज तक के दार्शनिक और इतिहासज्ञ कहते थे 'साम्यवादी देश किसी देश को पराधीन बनाने की नहीं सोच सकता।' अब वही कहते हैं, "चीन की प्रसारवादी नीति ने पिछले सत्यों को झुठला दिया है। साम्यवादी देश भी लोलुप और मदान्ध बन कर वही कुछ या उससे भी निकृष्ट कर सकता है जो साम्राज्यवादी देश करते हैं।"

आर्यों के घोड़ों की टापें द्रविड़ों की सभ्यता को रौंदती हुई निकल गईं और फिर आर्यों और द्रविड़ों की मिली जुली सभ्यता ने एक नये समाज को जन्म दिया। शक और हूण आए और फिर अपना लेकर और यहां का लेकर यहीं की माटी में रच-बस गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गौरी और गज़नवी आए और चले गए, सभ्यता ने एक करवट और ली। मुग़ल और अंग्रेज़ आए, उन्होंने इतिहास को खूब तोड़ा मरोड़ा, लेकिन टूट फूट कर भी इतिहास, इतिहास ही बना रहा और कुछ न बन सका। फिर इन्हीं लोगों ने इतिहास को कांट-छांट कर अपने मनचाहे ढंग से पहन ओढ़ लिया। सभी ने चाहा कि वे इतिहास को तोड़-मरोड़ कर अपने को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर दें। लेकिन युद्धभूमि में दौड़ते घोड़ों के सुमों की धूल और तोपों के गोलों से उड़ा धुआं इतिहास की धूल अटी तस्वीरों को समूल नष्ट न कर सका। मानव विकास की यह धूल अटी तस्वीरें, जिन्हें इन्सान ने अपने दिल के लहू से रंग दिया था, जिनमें उसने सांसों की तूलिकाओं से आत्मा के रंग समो दिए थे, धूल और धूएं के नीचे से झांकती रहीं ताकि इंसान अपनी सृष्टि को संवारना न भूल जाए। इतिहास में खोट आ सकता है, परन्तु इन तस्वीरों में खोट मिलाने की सामर्थ्य किसी भी आक्रामक और लुटेरे में, किसी भी लोलुप और स्वार्थी में नहीं है, क्योंकि गतिमय जीवन साक्षी है कि इन तस्वीरों ने सदा विकसित जीवन का साथ दिया है। यही वजह है कि ये तस्वीरें बोलती हैं।

पाषाण युग की तस्वीर कहती है कि तब व्यभिचार नहीं था, क्योंकि मनुष्य ने व्यभिचार की परिभाषा नहीं जानी थी। परिभाषा इसलिए उसकी समझ से बाहर थी, क्योंकि तब तक समय की धारा विवाह तक नहीं पहुंची थी। अभी तक एक स्त्री का एक पति न हुआ था। एक मर्द की एक बीवी नहीं हुई थी। यही वजह थी कि पाप का डर मन को डंसता नहीं था। पर हां, इसी कारण अभी समाज के नीति नियम भी भविष्य के गर्भ में थे। मां, बहिन, चाची, मौसी, मामा के सम्बन्ध अभी मनुष्य की कल्पना से बाहर थे। यह सब इसलिए था, क्योंकि मानव-कथा उस जगह से गुज़र रही थी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जहां खेत और हल अभी नहीं आए थे, आग और पहिये के भेद इन्सान ने नहीं जाने थे। जंगल थे, गुफाएं थीं, वन्य पशु थे, पत्थर के हथियार थे और इन्हीं सब के बीच जीवित रहने के लिए जूझता मनुष्य था।

देखिये पहली तस्वीर की बात खत्म नहीं हुई और दूसरी को अपनी व्यथा सुनाने का मोह हो आया है।

हुआ यूं कि एक बार श्वेतकेतु के पिता की उपस्थिति में एक ब्राह्मण श्वेतकेतु की माता को अपने मनोविनोद के लिए खींच कर ले गया। श्वेतकेतु को यह अनहोनी बात लगी। शंका का समाधान करते हुए पिता ने कहा—

"इस में अनहोनी तो कुछ भी नहीं है, यह तो हमारी प्रथा के अनुकूल ही है।"

"श्वेतकेतु के मन की गहराइयों में बैठे किसी ने कहा, "अगर यही प्रथा है तो अब यह नहीं रहेगी।" नियमित विवाह की प्रथा प्रारम्भ करने का श्रेय श्वेतकेतु को दिया जाता है।

स्वेच्छाचार के चिह्न वैदिक-पूर्व युग में पाये जाते हैं। ऋग्वेद के समय एक विवाह की संस्था भली भांति स्थापित हो गई थी। गृहस्थ धर्म भली प्रकार चल निकला था। साधारणतया एक पुरुष एक स्त्री से विवाह करता था। परन्तु श्वेतकेतु और उसके समर्थकों की अपनी सीमाएं थीं, अतः वे सब को अपने सांचे में न ढाल सके। उस समय भी राजा, श्रीमन्त, पुरोहित और ऋषि एक से अधिक विवाह कर लिया करते थे। सामुदायिक परिवार के घेरे से निकल कर मनुष्य व्यक्तिगत परिवार के घेरे में दाखिल हो रहा था और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसके पीछे खेतों, हलों, आग, पहियों, धान इकट्ठा करने के मिट्टी के बर्तनों का अपना प्रभाव था। हां, बालविवाह की प्रथा अभी नहीं थी। नारी को अपना पति चुनने में काफी स्वतन्त्रता थी। विवाह के बाद पत्नी पति की रक्षा में रहती थी, शिक्षा का भी प्रबन्ध था, पर्दा नहीं था। इसी से अपाला, विश्ववारा, घोषा, लोपामुद्रा आदि अनेक नारियां मंत्रकार ऋषि बन गईं। परिवार में केवल पति पत्नी ही न थे, क्योंकि परिवार सम्मिलित था। इसमें सास, ससुर, देवर, ननद, पुत्र, पुत्री सभी होते थे। कभी-कभी भूमि, पशु, आभूषण आदि के लिए अनबन हो जाया करती और कुल और सम्पत्ति बंट जाया करते।

पुराने वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊंचा रहा, परन्तु पिछले वैदिक काल में उनकी दशा गिरती गई। यह सही है कि गार्गी और मैत्रेयी की-सी विदुषियां समाज में थीं जिस से जान पड़ता है कि शिक्षा का कुछ न कुछ प्रबन्ध था। शायद स्त्रियों की आम स्थिति ऐसी नहीं थी। महर्षि याज्ञवल्क्य को मैत्रेयी के अलावा कात्यायनी नाम की दूसरी पत्नी भी थी जो विदुषी नहीं थी। महर्षि की दो पत्नियों का होना बहुविवाह प्रथा का प्रतीक है तथा नारी अधिकारों में कमी की ओर संकेत करता है।

महाभारत में भी कुछ ऐसे प्रदेशों का उल्लेख है जहां स्वेच्छाचार प्रचलित था। उत्तर कुरुओं का देश और माहिष्मती ऐसे ही थे। उस अवस्था में ऐसे प्रदेशों की पारिवारिक समस्याएं अन्य प्रदेशों से अवश्य ही भिन्न रही होंगी। महाभारत के शान्तिपर्व में गणराज्यों का वर्णन मिलता है जिन में पारिवारिक जीवन द्रुतगति से बदलता प्रतीत होता है।

इतिहास काल में स्त्रियों के अधिकार सीमित हो चुके थे। उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्थिति निरन्तर दयनीय होती जा रही थी। पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह करता था। सती प्रथा जोरों पर थी। नारियों में पर्दा शुरु हो गया था। महाभारत में स्वयंवर का वर्णन भी है, परन्तु तब के सामाजिक परिवर्तनों के दृष्टिगत वह पुरानी बात प्रतीत होती है।

हां, रामायण काल में स्थिति इससे कुछ भिन्न दिखाई देती है। रामायण में लड़के लड़कियों की सहशिक्षा का उल्लेख है। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में आत्रेयी, राम के पुत्र लव और कुश के साथ पढ़ा करती थी। अवश्य ही इस प्रकार की सहशिक्षा का पारिवारिक जीवन पर प्रभाव रहता होगा।

अथर्ववेद में ऐसी कन्याओं का उल्लेख है जो आजीवन अपने माता पिता के साथ रहती थीं। यूं प्रतीत होता है कि धर्मसूत्रों में आचार-नियमों में अन्तर अधिकतर स्थान विशेष के अपने-अपने रिवाजों और प्रथाओं के कारण ही बना।

सिद्धान्त रूप में मनु ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' कह कर नारियों का स्थान सामाजिक जीवन में बहुत ऊंचा दरसाने का प्रयत्न किया है। परन्तु प्रतीत यूं होता है कि ऋग्वैदिक काल के बाद स्त्रियों की स्थिति पारिवारिक जीवन में निरन्तर गिरती ही चली गई और उनका स्थान सम्पत्ति के अधिकारों में कम-से-कम तथा शिक्षा आदि में लगभग शूद्रों के बराबर हो गया। सैद्धान्तिक रूप में नारी को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने वाले मनु ने व्यावहारिक और सामाजिक जीवन में स्त्री के लिए सब कालों में स्वतन्त्रता छीन ली। उन्होंने नियम बनाया—

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्यों ज्यों जीवन में, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और औद्योगिक परिवर्तन होते गए पारिवारिक जीवन के दायरे तदनुरूप बनते मिटते रहे। इन्हीं धूल अटी तस्वीरों को देखने से पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य के अन्तिम राजा बृहद्रथ को उसके सेनापति पुरोहित पुष्यमित्र शुंग ने मार डाला और खुद राजगद्दी संभाल ली। इस षड्यन्त्र के सूत्रधारों में से पतंजलि भी थे। महर्षि पतंजलि ने हिन्दू कर्मकाण्ड को जीवन में पुनः प्रतिष्ठित किया तथा सामाजिक ढांचे को फिर से बदलने के प्रयत्न किए। ऐसी उथल पुथल में अवश्य ही स्त्रियों ने भी भाग लिया होगा या फिर स्त्रियों के लिए शुंग काल में सैनिक शिक्षा के सुअवसर रहे होंगे। महर्षि पतञ्जलि ने अपनी रचनाओं में भाला चलाने वाली महिलाओं का 'शक्तिकी:' कह कर उल्लेख किया है। भारहुत की मूर्तियों में भी कुशल अश्वारोही स्त्रियों की सेना का चित्रण है। मैगस्थनीज़ ने चन्द्रगुप्त की अंगरक्षक अमेज़न महिलाओं का वर्णन किया है। कौटल्य ने भी महिला धनुर्धरों की बात कही है। इस से स्पष्ट है कि इस प्रकार की सैनिक शिक्षा प्राप्त तथा राजनीतिक हलचलों में भाग लेने वाली स्त्रियों का पारिवारिक जीवन उस काल के साधारण पारिवारिक जीवन से भिन्न स्तर पर रहा होगा।

चन्द्रगुप्त ने शकराज को मार कर अपने बड़े भाई रामगुप्त की पत्नी ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया। कायर भाई को राजगद्दी से उतार कर उसने खुद राजगद्दी सम्भाल ली। उसके कार्य को न्यायोचित ठहराने के लिए स्मृतियों में विधवा-विवाह की नई व्याख्या हुई। नालायक या कायर पुरुष के रहते पत्नी का दूसरा विवाह जायज़ करार दिया गया।

एक विवाह प्राणिशास्त्रीय नियमों के अनुकूल नहीं बैठता, न ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वाभाविक स्थिति है, अपितु सामाजिक जीवन को आवश्यकताओं के अनुसार सुचारु रूप देने के लिए विवाह पद्धति प्रचलित हुई है और इस पद्धति में भी समय के प्रवाह के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं।

स्त्री या पुरुष यह चाहता है कि उसे ऐसा साथी प्राप्त हो जिस के साथ वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप से एकात्मता का सुख अनुभव कर सके। समाज के अनुशासन को बनाए रखने के लिए शारीरिक भूख पर; जिसका प्राणिशास्त्रीय नियमों के अनुसार बहुत दूर तक छोर चला गया है; अंकुश और नियन्त्रण अत्यावश्यक है। सिद्धान्त रूप में यह मान लेने पर भी इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता कि यदि स्त्री पुरुष के आपसी सम्बन्ध स्वस्थ न हों तो वे अपने-अपने ढंग से पारिवारिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर सुख ढूंढने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार के सामाजिक अनुशासन और पुरुष की आदिम प्रवृत्ति के संघर्ष को देख कर डिमौस्थनीज़ ने खुले न्यायालय में कहा था—"प्रत्येक पुरुष के पास अपनी पत्नी के अतिरिक्त कम से कम दो रखेलें होनी चाहिएं।"

एक ऐसा ही धूल अटा चित्र है कि ऐथेन्स के चरम उत्कर्ष के दिनों में पैरीक्लीज़ के यहां एक मिलेशियन स्त्री 'ऐस्पैसिया' रखेल के रूप में रहती थी। डिमौस्थनीज़ ने अपने काल के यूनानी समाज का चित्रण इन शब्दों में किया है—

"हमारे पास आनन्द प्राप्ति के लिए वेश्याएं हैं, शरीर की दैनिक परिचर्या के लिए रखेलें हैं और सन्तानोत्पादन के लिए पत्नियां हैं जो हमारे घरों की विश्वस्त देख भाल करने वाली भी हैं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महर्षि वात्स्यायन ने शारीरिक भूख के नियन्त्रण की अनिवार्यता को सामाजिक हित के लिए आवश्यक समझते हुए तथा मानव मन में होने वाले अन्तर्द्वन्द्व को समझते हुए अपने एक सूत्र में कहा कि पुरुष अपनी स्त्री से सहवास करते समय चाहे तो अपनी प्रेमिका की कल्पना कर सकता है।

कौटल्य के 'अर्थ-शास्त्र' में वेश्याओं के विषय में विशेष नियमावलि उद्धृत है। देवदासियों का मन्दिरों में होना तो अभी कुछ ही समय पहले की बात है। रघुवंश के महाराज अग्निवर्ण के महलों से लेकर मुग़लों के हरमों तक का इतिहास ऐसे कटु यथार्थों से भरा पड़ा है जहां स्त्री सम्पत्ति के रूप में प्रयुक्त होती दिखाई देती है। उसे निष्प्राण समझ कर उसका आदान प्रदान होता है। नारी कुढ़ती रहती है, तिल तिल जलती रहती है और होंठों पर मुहर लगाए प्रत्येक साँस की मीठी मीठी आंच पर सती होती रहती है! विलासोन्मत्त समाज तभी चौंकता है जब हृदय में सुलगती चिताओं की आग उनके पारिवारिक जीवन को झुलस कर रख देती है। सुना है कि जब पिछले महायुद्ध के बाद फ्रांस की बीस लाख विधवाओं की तथा जनसंख्या बढ़ाने की समस्या समाज के कर्णधारों के सम्मुख आई तो उन्हें विशेष प्रकार के स्नानागृह बनवा कर महिलाओं के लिए मुक्तसहवास की ढील कुछ समय तक देनी पड़ी।

आज हम जिस पारिवारिक संस्था में जी रहे हैं इसके पीछे सहस्राब्दियों के मानव संस्कार; शताब्दियों की ऐतिहासिक उथल-पुथल, उलझती सुलझती, बनती मिटती और मिट मिट कर संवरती संस्कृतियों के प्रभाव, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों के परिवर्तनों की छाप; औद्योगिक विकास के परिणाम तथा इन्हीं सब के बीच मानव मन में निरन्तर चलते अन्तर्द्वन्द्व की एक लम्बी कहानी छिपी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पड़ी है। इस लम्बी कहानी के, जो आज से सैकड़ों हज़ारों वर्ष पहले शुरु हुई थी और लाखों वर्षों तक चलती रहेगी, हम एक साधारण से पात्र हैं। हम अपने बोल कहानी में जोड़ कर चले जाएंगे, ताकि आने वाली पीढ़ियां आगे की कड़ियां कहानी में जोड़ती रहें, कहानी सरकती रहे, मानव जीवन गतिमय बना रहे, प्रतिपल प्रवाहित होता रहे, निरन्तर विकसित होता रहे।

इसमें सन्देह नहीं कि इस सतत् प्रवाहित जीवन में कुछ क्षण ही हमारे हिस्से में आए हैं और पात्रों की हैसियत से हमारी भूमिका काल विस्तार को देखते हुए बहुत छोटी सी है, परन्तु हम क्षणों को किस खूबी और सार्थकता के साथ जीते हैं, यह हम पर निर्भर है। यह देखने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व हम पर है कि युग-युगान्तरों तक चलने वाली कहानी में कहीं आलस्य और स्वार्थवश अथवा आत्म-साधना के अभाव में ऐसे शब्द न जोड़ दें, जिस से कहानी का बहाव ठहर जाए, वह कुरूप बन जाए और आने वाले लोग सिर पटक पटक के रह जाएं, लेकिन इस सुन्दर कहानी को संवार न सकें।

जब-जब नारी को पुरुष समाज ने निष्प्राण सम्पत्ति समझ कर अपने क्षणिक हितों की आड़ में उसके जीवन से मनमाने खिलवाड़ खेलने का प्रयत्न किया है, समाज के शरीर के अन्दर ही अन्दर निरन्तर कोढ़ फूटता रहा है, फिर देखते ही देखते, लाख छिपाने पर भी, समाज के शरीर से दुर्गन्ध फूट पड़ी है और समाज चिकित्सकों ने बीमारियों के इलाज के लिए लाख लाख जतन किए हैं। परिवार सामाजिक शरीर में एक कोषाणु (सेल) की तरह है। यदि कोषाणु में प्रजनन की इच्छा समाप्त हो जाए तो मानव प्रगति को गर्त में गिरते देर नहीं लगेगी। आज के युग में विशेष परिवर्तनों को सही ढंग से समझते हुए परिवार को जीवित तथा स्वस्थ बनाए रखने के लिए विशेष और उचित प्रयत्नों की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

औद्योगिक विकास ने विवाह सम्बन्धों में परिवर्तन लाना प्रारम्भ कर दिया है। विभिन्न प्रदेशों से विभिन्न रीति रिवाजों से निकल कर लोग किसी उद्योग में काम करते रहते हैं, वहीं के नागरिक बन जाते हैं। फिर पिछली जड़ें उखड़ती रहती हैं; नई जमती रहती हैं। एक नई प्रथा जन्म लेती है। परिवार का रूप बदलता है। उन लोगों में प्रान्तों और पिछले रीति रिवाजों को भूल विवाह सम्बन्ध होने लगते हैं। इस परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता। इसके अधिक फैलने और परिवार की परिधियों में परिवर्तन की सम्भावना है।

सामाजिक जीवन में नारी आज अपनी भूमिका निबाहने के लिए कटिबद्ध है, ये शुभ लक्षण हैं। औद्योगिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामरिक तथा शिक्षा क्षेत्र में नारी सक्रिय है। आज हम नारी को डॉक्टर, मशीन ऑपरेटर, टीचर, समाज सुधारक, लेखक, क्लर्क, सेल्सगर्ल, एयर होस्टेस, ऐक्ट्रेस, नर्स तथा पोलीस ऑफिशियल और भी कितने ही रूपों में देखते हैं। अपने अपने क्षेत्र में काम करते समय नारी को उस क्षेत्र में काम करने वाले विभिन्न पुरुषों के सम्पर्क में आना पड़ता है। यदि स्वस्थ चिन्तन के आधार पर पुरुष ने अपने दृष्टिकोण को विशाल न किया और शंकाओं, हीन मनोभावनाओं, कुंठाओं, विक्षिप्तताओं तथा भ्रान्तियों की जड़े पुरुष के मन मे गहरी होती गईं तो पारिवारिक जीवन को ग्रहण लगते विलम्ब नहीं होगा और शुभ लक्षण अशुभ-लक्षण बन कर इन्सानी तरक्की का मुंह चिढ़ाया करेंगे।

सन्देह नहीं कि स्त्रियों के कार्यक्षेत्र बढ़े हैं, आज पुरुष वर्ग के सम्पर्क में आने के अवसर उनके लिए बढ़े हैं, परन्तु इसके साथ ही उनके उत्तरदायित्व भी पहले से कई गुणा बढ़ गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पति के लिए जहां यह आवश्यक है कि वह सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाली पत्नी को सन्देह की दृष्टि से न देखे वहां ही पत्नी के लिए यह आवश्यक है कि अपनी सीमाओं को समझते हुए वह पारिवारिक जीवन को विषाक्त होने से बचाए रखे। पत्नी को अपने क्षेत्र में काम करने वाले सहयोगियों के साथ उठते-बैठते, टहलते घूमते देख पति महोदय यदि शंका और ईर्ष्या की आग में जलते रहेंगे तो पारिवारिक जीवन के स्वस्थ वातावरण को भस्म होते अधिक देर नहीं लगेगी। पत्नी यदि सहयोगियों के सम्पर्क में आने के बाद पारिवारिक उत्तरदायित्व को भूल जाएगी और आपसी मेल जोल के अवसरों को अनुचित रूप में प्रयुक्त करने की बात सोचेगी तब भी इस पवित्र जीवन में ज़हर घुलते विलम्ब नहीं होगा।

इस नये युग के सन्दर्भ में इस बात की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है कि पति-पत्नी एक दूसरे के स्वतन्त्र अस्तित्व को तथा परस्पर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप से पूरक होने की भावना को सही परिप्रेक्ष्य में समझें, ताकि इन्हीं परिवर्तनों के बीच में से गुज़रती पारिवारिक संस्था मानव-विकास में अपनी भूमिका निबाहती रहे। यदि पति पत्नी के सम्बन्धों का आधार स्वस्थ चिन्तन की अपेक्षा किसी भी प्रकार की आर्थिक, रूढ़ि-ग्रस्त, झूठी मान मर्यादा सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार की विवशताओं पर हुआ तो ये सम्बन्ध आज के युग में अधिक देर नहीं ठहर पाएंगे।

एक बात और! औद्योगिक विकास का प्रभाव संयुक्त परिवार प्रथा पर पड़ना अवश्यभावी है। श्रमजीवियों के वेतन निर्धारित करते समय केवल पति पत्नी तथा उन पर निर्भर बच्चों को ही एक 'फेमिली यूनिट' माना जाता है। इस प्रकार आर्थिक कारणों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माता-पिता तथा भाई बहिन संयुक्त परिवारों से कटते जा रहे हैं। इन परिस्थितियों में आर्थिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवारों की सम्भावनाएं क्षीण होती जा रही हैं। यदि हम इन परिवर्तनों को भुला कर पारिवारिक सम्बन्धों को समझने का प्रयत्न करेंगे तब मनोमालिन्य बढ़ जाने की सम्भावना रहेगी।

जीवन निरन्तर बहता जा रहा है, प्रति पल हमारे हिस्से में आए एक क्षण को हम से छीन लेता है। चाहिए यही कि हम धूल अटी, बनते मिटते दायरों की तस्वीरों को भली भांति समझें परखें, मानव मूल्यों की थाती से परिवार की गिरती ढहती दीवारों को संवारते रहें और समाज का जीवन बनाए रखने के लिए परिवार के कोषाणु (सेल) को निष्प्राण न होने दें। हम चिर निद्रा में निमग्न होने से पहले इस सतत प्रवाहित कहानी में कुछ ऐसे बोल जोड़ जाएं जिन से कहानी की नोक पलक संवर जाए, उसके दिल की धड़कनें युग-युगान्तरों के दिलों की धड़कनों में सुनाई देती रहें, जीवन बहता रहे, विकसित होता रहे।

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज के युग में निष्ठा कहां, कला में ?

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, लाखों में शायद एक-आध ही, जिन्हें किसी पहले जन्म के संचित पुण्य प्रताप से अचानक घर में गड़ा अशर्फियों का घड़ा मिल जाता है और जीवन की सारी सुख-सुविधाएं उनके महल की चौखट पर ज़िन्दगी भर माथा रगड़ती रहती हैं। यही हाल साहित्य के क्षेत्र में भी है। सुना है कि कुछ भाग्यवान ऐसे होते हैं कि अचानक उन्हें अलादीन का चिराग़ मिल जाता है और फिर जिन्न को आदेश देते हैं, "निष्ठा का बाज़ार आजकल गर्म है, जरा इस चमचमाती निष्ठा की सौ-दो-सौ थैलियां हमें भी ला दो।"

निष्ठा, उन्हें साधना श्रम द्वारा कमानी नहीं पड़ती, अलादीन के चिराग़ द्वारा प्राप्त होती है। अगर चिराग़ ग़ायब तो निष्ठा भी साथ ही ग़ायब। अपने अन्तर में झांक कर देखता हूं तो पाता हूं कि मेरी गिनती उन गिने चुने भाग्यवानों में नहीं है। कोई पूछे, 'कला में निष्ठा कहां ?' तो जो थोड़े-बहुत कांच के टुकड़े मैंने आज तक जीवन में भटक-भटक कर बटोरे हैं उन्हें ही सकुचाते सकुचाते दिखाने के सिवाय और कोई चारा दिखाई नहीं देता।

मेरी मां के जब गुड़ियों से खेलने और मिठाई खाने के दिन थे तभी उसके माता पिता उसे विषम परिस्थितियों से खेलने और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवन की ठोकरें खाने के लिए छोड़, परले छोर पहुंच चुके थे। अपने बचपन की धुन्धली सी स्मृतियां आंखों के आगे तैर तैर जाती हैं। मां के गीतों की राजकुमारी जंगलों में भटक जाती, लुटेरे उसे लूट लेते, वह भूखी प्यासी जंगलों में घायल तलवे लिए भटकती, कभी कौए के हाथ कभी सुग्गे और कबूतर के हाथ अपने मां बाप को संदेसे भेजती ! मैंने मां से पूछा था, "मां, राजकुमारी मर गई थी क्या ?"

मां ने सिसकते हुए, खेतों में उपले बीनते हुए कहा था, "नहीं बेटे ! बहुत बहादुर थी, फिर मरती क्यों कर भला ?"

सोचता हूं, इतना कुछ लिख कर भी मां के गीतों जैसी एक भी कहानी कहां लिख पाया हूं ? निष्ठा के प्रथम दर्शन मुझे मां के गीतों में हुए थे, क्योंकि वे गीत उसके एकाकीपन का सम्बल थे, उसके जीवन का अभिन्न अंग बन गए थे।

मैंने अपने अनुभव से जाना है कि व्यक्ति और समाज में जब तक जिजीविषा है तब तक निष्ठा फूल में सुगन्ध की तरह रची-बसी रहती है। यदि ऐसा न होता तो महाप्रलय के बाद भी मनु और श्रद्धा बचे न रहते।

मैं जहां तक समझ पाया हूं, निष्ठा भिक्षा में मांगी नहीं जाती, साधना द्वारा अर्जित होती है। जब हम अन्य की निष्ठा को अपनी कह कर ओढ़ना चाहते हैं तभी साहित्य का दुर्भाग्य शुरू होता है। भीख में मिली निष्ठा से चांदी सोना भले ही जुटा लीजिए, सत्य के शिव और सुन्दर सुरभिमय पुष्प, ऐसे पुष्प जो व्यक्ति और समाज की भौतिक और नैतिक प्रगति के पथ पर दूर दूर तक सुवास बखेर दें, पथिकों की थकन हर लें, नहीं खिलाए जा सकते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'शरत् बाबू' के 'चरित्रहीन' की 'किरणमयी' की बात मुझे नहीं भूलती—जो सत्य है उसको ही सदा, सब अवस्थाओं में ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। उससे वेद ही मिथ्या हो जाएं और शास्त्र ही मिथ्या हो जाएं तो क्या ? सत्य की अपेक्षा ये बड़े नहीं हैं, सत्य की तुलना में इनका कोई मूल्य नहीं है। आंखें बन्द करके असत्य को सत्य कह कर विश्वास करने में कुछ भी पौरुष नहीं है।"

'शरत् बाबू' की इस बात को रटा मैंने बहुत बार, लेकिन इसका अर्थ समझा बहुत देर बाद। नौसिखुए लेखक की हैसियत से जब मैं अपनी रचनाएं सुधारने के लिए उन लोगों के पास पहुंचा जो आलोचना और साहित्य के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके थे तो मेरा दिमाग़ चकरा गया। विभिन्न वादों और सिद्धान्तों ने उनके ऊपर बुरी तरह काठी जमायी हुई थी और वे सभी सत्य की लाश के कटे अंगों को उठाए फिर रहे थे। उनकी राय के मुताबिक जब अपनी रचनाओं को ठीक करने बैठता तो मुझे उस दरज़ी की याद आ जाती जो कमीज़ को ठीक करने की बजाय आदमी की बांह काट कर कमीज़ को फिट बताना चाहता हो। किसी ने यह नहीं कहा कि सीखो सब से, परन्तु सृष्टि करो अपने अनुभूत सत्य की। घड़े-घड़ाए नुस्खों का सहारा लेकर जो कहानियां मैं लिखता उससे वर्ग विशेष में वाहवाही तो होती, लेकिन एकान्त में आत्मा चीत्कार करती रहती। मुझे यूं लगता जैसे मैंने किसी मरी लड़की की आंखों में किसी नशे में बहक काजल लगा दिया हो। नशा उतरने पर पथराई आंखों में काजल लगा देखता तो मेरी चीखें निकल जातीं।

बहुत ठोकरें खाने के बाद मैंने जाना है कि जीवन प्रतिपल गतिमय है, नित नूतन है, सतत प्रवाहित है और ऐसे जीवन का सत्य निरन्तर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विकासशील है। इस विकासशील सत्य को जब हम घड़े घड़ाए चौखटों में फिट बैठाना चाहते हैं तो सजीव पात्र डोरे से बंधी कठपुतलियों की तरह वादों और सिद्धान्तों की धुनों पर या पार्टी नारों के आर्केस्ट्रा के मुताबिक नाचने लगते हैं और तब प्रतिक्रिया के दानव अट्टहास करते हैं और निष्ठा की देवी रूठ जाती है। 'पास्टरनक' के 'ज़िवागो' और 'लॉरा' इसीलिए सजीव हैं, क्योंकि उन्होंने वादों और सिद्धान्तों की धुनों पर नाचने की अपेक्षा अपने अनुभूत सत्य की स्वर लहरियों पर नाचना पसन्द किया है। साहित्यकार की अनुभूति का स्तर और स्वभाव परिवर्तित होता रहता है अतः अभिव्यक्ति में विभिन्नता अनिवार्य है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि साहित्यकार यह न भूले कि उसे सत्य की अभिव्यक्ति द्वारा शिवत्व और सौन्दर्य तक पहुंचना है। जब साहित्यकार शिवत्व और सौन्दर्य की बात भूलता है तभी निष्ठा के पांव लड़खड़ाने लगते हैं।

सतत प्रवाहित जीवन का निरन्तर विकसित सत्य ही वाल्मीकि के ओज, कालिदास के सौन्दर्य, तुलसी की उदारता और सूरदास की आत्मतल्लीनता को अपने में संजोए 'गोदान' के 'होरी' और 'धनिया' से होता हुआ 'मैला आंचल' के 'बावनदास' 'बालदेव' और 'लछमी' तक पहुंचता है पुनः अग्रसर होता है, अतः कला में निष्ठा के अस्तित्व में सन्देह नहीं रहता। 'मुंशी प्रेमचन्द' के 'होरी' की पराजयों में ही मानव की विजय-कहानी की भागीरथी बह रही है तभी तो 'मैला आंचल' का 'बावनदास' दो आज़ाद देशों की, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की ईमानदारी को, इन्सानियत को बस दो डगों में ही नाप लेता है।

'शरत् बाबू' की 'किरणमयी' और 'कमल' ही फिर से 'विमल मित्र' की 'छोटी बहू' और 'जवा' में जी उठी हैं। निष्ठा के खो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने का भय उन्हें हो सकता है जो किसी मील के पत्थर को ही आखिरी मंज़िल समझ कर बैठ गए हों या फिर इस सतत प्रवाहित जीवन के किसी एक क्षण को पकड़ कर ही उसे सर्वस्व समझ बैठे हों। यह भय उन्हें भले ही डराए, निष्ठा की व्यापकता को रोक नहीं सकता। यही कारण है कि जब एक ओर 'निष्ठा कहां ?' का शोर है तब भी 'भूले बिसरे चित्र' के 'ज्वालाप्रसाद' 'जैदेई' और 'गंगाप्रसाद'; 'बूंद और समुद्र' के 'सज्जन' 'महीपाल' और 'शीला'; 'यशपाल' की 'अमिता' और 'नागार्जुन' के 'बलचनमा' सधे तुले कदमों से, पूरी आस्था के साथ सत्य के उन लक्ष्यों की ओर बढ़ रहे हैं जो सीमाओं से परे तक चले गऐ हैं। ये उसी निष्ठा के अगले चरण हैं जिसे हमने 'नाव दुर्घटना' के 'रमेश' और 'कमला' में 'शरत् बाबू' के 'देवदास', 'पार्वती' और 'चन्द्रमुखी' में 'विराज बहू' की 'विराज' और 'नीलाम्बर' में देखा था।

यह मानव प्रगति की धारा सीधी सपाट नहीं बहती कभी कभी इसमें ऐसे मोड़ आते हैं जब यूँ भ्रम होता है जैसे इन्सान पीछे की ओर लौट रहा हो, कभी अवरोधों को देख कर प्रतीत होता है बस यहीं मानवता की चिर-विश्राम स्थली बनेगी, कभी यन्त्र को मानव पर काठी जमाए देख हम समझते हैं, आत्मा और परमात्मा की बातें झूठी हैं परन्तु पुन: इन्सान के भगीरथ प्रयत्न हमारे सन्देहों और शंकाओं को झुठला देते हैं, वह चिर प्रवाहित धारा मानव प्रगति की अगली मंज़िलों की ओर बह निकलती है। कभी कभी यूं लगता है कि हम सब कुछ खो बैठे, परन्तु उस खोने की प्रक्रिया में से गुज़र कर ही पाना होता है।

ऐसी शंकाओं और सन्देहों के क्षणों में 'गिरिजाकुमार माथुर'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की 'व्यक्तित्व का मध्यान्तर' की 'पंक्तियां मुझे सजग कर जाती हैं।

"चल रहा उमर का रथ दिनान्त के पहियों पर,
मंजिलें खोखली, पथ ऊसर एकाकी है,
गति व्यर्थ गई, उपलब्धि हीन साधना रही,
मन में लेकिन सन्ध्या की लाली बाकी है।

इस लाली का मैं तिलक करूं हर माथे पर,
दूं उन सब को जो पीड़ित हैं मेरे समान,
दुख दर्द अभाव झेल कर भी जो झुके नहीं,
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान।"

'चिर-कथा के मोड़' उपन्यास पाठकों तक पहुंचा तो एक साहित्यिक मित्र जले भुने मेरे पास चले आए। बौखलाए हुए बोले, "अमां यार ! कुछ तो होश करो। किधर जा रहे हो ? तुम भी 'राइट रिवीजनिस्ट' बन जाओगे, तुम से ऐसी उम्मीद तो न थी। ख़ुदा के लिए मार्क्सवाद में ये नए तारे टांकना बन्द करो।" मेरी बात से नाराज थे, क्योंकि मैंने कह दिया था कि अगर मार्क्सवाद कभी भारत में आया तो गंगा जमना के पवित्र पानी में डुबकी लगा कर, तन मन का मैल धो कर ही आ सकेगा। जो मित्र मुझ से कहते हैं इन दुःखान्त कहानियों और उपन्यासों को लिखने से फ़ायदा ? उनसे यही कहता हूं कि अनन्त कष्टों और व्यथाओं में से होती हुई ही राह मंज़िलों की ओर चली गई है, इनसे दामन बचा कर निकलने का मतलब है आस्था की कमी अथवा आत्मप्रवंचना। 'शरत् बाबू' की बात कैसे भूलूँ, 'कोरी प्रवञ्चना को ही मूलधन मान कर दुनियां में रोज़गार नहीं किया जा सकता।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज के साहित्यकारों में एक मर्ज बुरी तरह बढ़ रहा है। साहित्यिक बन्धुओं के चिन्तन की कसौटी पर जो खरा न उतरे, बस ये मित्रगण हाथ में छड़ी लेकर उसे ठोकने पीटने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस मार्ग को अपनाने से किसी अन्य का बने या न बने अपना बिगड़ता अवश्य है। पिछले वर्षों में 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' को लेकर खूब चख-चख चली। मैंने पढ़ा तो मुझे उस कृति में भी निष्ठा के दर्शन हुए। एक मित्र से कहा तो मेरी अक्ल पर उन्हें रहम आने लगा। 'आत्मनेपद' में 'अज्ञेय' का स्पष्टीकरण पढ़ा, "जो अपने लिए नहीं लिखा गया; वह दूसरे के सामने उपस्थित करने लायक ही नहीं है। 'अपने लिये' अर्थात् अपने को यह बात सप्रमाण दिखाने के लिए कि मेरी आस्था, मेरी निष्ठा, मेरी संवेदना-जाल की सम्पूर्णता और सच्चाई, मेरी इन्टेग्रिटी उस में अभिव्यक्त हुई है।"

बहुत बड़े बड़े साहित्यक दिग्गजों को साहित्य के अखाड़े में मल्लयुद्ध करते देख घबरा उठता हूं तो अचानक 'महादेवी' की 'दीप-शिखा' की पंक्तियां बदली की तरह मेरी मरुस्थल-यात्रा के पथ पर छा आती हैं,

"दोनों पंथी पथ एक किन्तु,
कब दीप खिला कब फूल जला।
सब आंखों के आंसू उजले,
सबके सपनों में सत्य पला।"

फिर यह भी भूल नहीं पाता कि इस साहित्यिक जीव पर जिस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की स्थिति समाज में निम्न मध्यवर्ग की है, चारों ओर से विषम परिस्थितियों, आर्थिक संकटों के प्रहार होते रहते हैं। अपनी बात कहूं तो मित्रों के विश्वासघात, स्वजनों के बिछोह, परिस्थितियों के प्रचण्ड आघात, आर्थिक जर्जरता और लोभ के इन्द्रजाल, सगे-सम्बन्धियों के ताने-उलाहने और जीवन में दूर दूर तक एकाकीपन और तप्त मरुस्थल की सांय सांय, इन सबके कारण घबरा भी उठता हूं। रुंधे गले से 'विभूति बाबू' की 'पथेर पांचाली' के 'अपू' की तरह कहता हूं, "भगवान्! मुझे फिर से परियों के देश, मां के गीतों की दुनियां में, बाबा की कहानियों के पास लौटा ले चलो, मुझसे अब चला नहीं जाता।"

पथ के देवता प्रसन्न होकर कहते हैं, "मूर्ख लड़के! दिन रात पार करते हुए, जन्म-मृत्यु पार करते हुए, महीना, वर्ष, मन्वन्तर, महायुग पार होकर रास्ता चला गया है। तुम्हारे सुन्दर जीवन-स्वप्न पर सेवार और फफूंद लग जाते हैं फिर भी रास्ते का कभी अन्त नहीं होता, वह आगे ही चलता जाता है। उसकी शाश्वत वीणा की रागिनी को केवल अनन्त काल और अनन्त आकाश सुनते हैं। इस चक्रव्यूह विजय का अदृश्य तिलक हमने तेरे माथे पर लगा दिया है। चलो, आगे चलें···।"

फिर यह सोच कर चल पड़ता हूं कि थक हार कर बैठ गया तो चक्रव्यूह से विजित होकर निकल आने की कहानी कहीं फिर बीच में ही न रह जाए। थक कर बैठने लगता हूँ तो 'विश्वास की सांझ' की ये पंक्तियां मस्तिष्क में तैर आती हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नियति बोली, आस्था वाले, अरे ओ होश कर,
ज़िन्दगी में साथ देता है कभी, कोई बशर।
असलियत से युद्ध होता है, निहत्था, जान ले,
इस लिए तू पूर्व इसके कवच-कुण्डल दान दे।"

आगे चल निकलता हूं ताकि जीवन की गतिमयता बनी रहे, भविष्योन्मुखी निष्ठा की खोज में भटकना न पड़े।

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

टूटे साज़-भटके गीत

हैदराबाद से लौटते समय अजन्ता की गुफाएं देखने का मोह हो आया। एक भित्ति-चित्र के आगे मुझे टकटकी बांधे देख मेरे साथी कहने लगे—"इसी रफ्तार से देखिएगा तो महीनों लग जाएंगे।"

मैंने कहा—"जो देख रहा हूं, उसे देखने के बाद अधिक सहेज पाने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है।"

बुद्ध, यशोधरा के द्वार पर भिक्षा पात्र ले कर आए थे। यशोधरा क्या देती ? उसका स्वामी, भिखारी बन कर द्वार पर उपस्थित हुआ था। एक ही लाल बेचारी के पास बचा था, वही 'राहुल' उसने अपने सर्वस्व की झोली में डाल दिया। सर्वस्व को सर्वस्व देकर मुक्त हो गई। यूं लगता है मानो किसी चितेरे ने भावना में डूब कर चित्र नहीं आंका था, एक सजीव घटना है जो हमारी आंखों के सामने घट रही है।

इतिहास के पन्ने आंखों के आगे फरफराते रहे। कितने ही राजा और शहन्शाह, राज्य सत्ताएं और हकूमतें, दुर्गों और किलों के द्वारों से निकलती उनकी विजयवाहिनियां और फौजें धूल उड़ातीं, पताकाओं को फहरातीं रक्तरंजित तलवारों और नेज़ों की चमक से आंखों को चौंधियातीं सामने से गुज़र गईं। फिर खण्डहरों में भटकती और अपनी गूंज से टकरा कर टूटती आवाज़ों के सिवाय कुछ भी नहीं रहा। इन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सभी भटकी और टकरा कर टूटती आवाजों को दुलराती एक भावमयी करुणाभीगी आवाज सुनाई दी—"मोग्गलान, राहुल को सम्बुद्ध बनाओ। बुद्ध के पास इस बुद्ध के अतिरिक्त देने को है ही क्या ?"

अचानक कानों में वेद-वाक्य गूंजा, "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते.. ।"

उसी में से भगवान् कृष्ण के स्वर गूंजे, "यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।"

उन्हीं स्वरों में भगवान् शंकर की वाणी घुल मिल गई, "नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम अन्तर्बहिःशून्यमनन्यमात्मनः—विज्ञाय सम्यङ् निजरूपमेतत् पुमान् विपाप्मा विरजो विमृत्युः ।"

फिर न जाने कैसे वेद, कृष्ण, शंकर और बुद्ध की आवाजें मिलकर एक हो गईं 'मानव को सम्बुद्ध बनाओ-–मानव को सम्बुद्ध बनाओ ।'

वही आवाज चैतन्य, कबीर, रैदास, नानक, नामदेव और रामदास की वाणियों में मुखरित हो उठी, बहती रही, फूलती-फलती रही। आंधी तूफानों में उसी आवाज को रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ ने अपनी अटूट साधना द्वारा बचाया बढ़ाया ।

एक बार फिर लोहू-सनी तलवारों ने इस आवाज को मारना चाहा तब यह नवाखली की पगडण्डियों पर घायल तलवे लिए हुए घूमी ताकि लोक-हृदय इसे अपने नन्हें नन्हें घरों में जगह दे सके।

यह आवाज भी इसलिए अमर है, क्योंकि इसे कोरे ज्ञान अथवा अहं ने नहीं अपितु भावना और साधना ने पाला पोसा है । बुद्धिजनित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिद्धान्त हमें अपने भीतर उनका प्रतिबिम्ब खोजने पर विवश करते हैं परन्तु भावनाजनित बोलों का सम्पर्क सीधा हमारे हृदय से होता है, वहां तर्क की अथवा प्रतिबिम्ब खोजने की गुंजाइश नहीं रहती।

यदि आज एक ओर नीरस मानव मस्तिक वैज्ञानिक प्रगति कर रहा है तो दूसरी ओर सरस मन के अभाव में उसी प्रगति के क्षितिज पर महाविध्वंस के काले बादल भी उमड़ घुमड़ रहे हैं। क्योंकि नीरस मस्तिक में कृष्ण की नीति ही समाती है सुमधुर बांसुरी के स्वर नहीं समा पाते; अतः समझ में नहीं आता कि यदि ये काले बादल मूसलाधार बरस भी गए तो गोवर्धन किन उंगलियों पर उठेगा ?

बुद्धिवृत्ति और रागात्मिकावृत्ति से मिल कर जीवनवृत्त बनता है। इस पूर्णवृत्तके अभाव में जीवन के केन्द्रबिन्दु मानव आत्मा को समझ पाना कठिन है। जब तक केन्द्रबिन्दु मानव आत्मा को न समझा जाए तब तक मानव आस्था डगमगाती रहती है और सत्य के खण्डित रूपों पर ही व्यष्टि और समष्टि मुग्ध होते रहते हैं। जीवन प्रतिपल गतिमय है अतः सत्य निरन्तर विकसित है। इस निरन्तर विकसित सत्य को ज्ञान की, विभिन्न दर्शनों की और वादों की समानान्तर छोटी बड़ी रेखाएं लगा कर शायद नापा तो जा सकता है परन्तु उसकी अथाह गहराई तक उतरा नहीं जा सकता। मानव मन की थाह पाना कठिन है और भावना के अतिरिक्त जो स्वयं असीम है इस जीवन सत्य की गहराई तक पहुँचना असम्भव है। ज्ञान, अहं के तुरंग पर सवार हो कर बढ़ता है अतः ठोकर खाता है, गिरता है और फिर सम्भलता है। भावना, अहं-विसर्जन की ऊँची नीची तरंगों पर तैरती हुई आगे बढ़ती है अतः मन की लहर से सम्पृक्त रहती है, सामञ्जस्य बना रहता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उपदेशक ज्ञान के माध्यम से श्रोताओं तक पहुँचता है। श्रोता उसे अपने अपने संचित ज्ञान से ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं अतः कहने और सुनने वाले में शंका और तर्क की गुन्जाइश बनी रहती है। कवि या गायक भावना द्वारा श्रोता तक पहुंचता है अतः तर्क और शंका की गुन्जाइश समाप्त हो जाती है। एक ही तार गाने वाले और सुनने वाले के मन में बजता रहता है।

इस यन्त्रयुग की भागमभाग में क्योंकि यह मन का तार टूट गया है अतः मन से मन जोड़ने वाले गीत भटक गए हैं। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र, पूंजी और शक्ति के माध्यम से दूसरों पर काठी जमाना चाहते हैं और अपनी इस सीनाज़ोरी को छिपाने के लिए अपनी अपनी कूटनीतिक चालों को नाना प्रकार के बहुरंगी और आकर्षक दर्शनों के झिलमिलाते आवरणों से सजा संवार कर दुनिया को ठगना चाहते हैं। गीतों के उखड़े उखड़े बोलों के कारण आज कबीर का ताना बाना उलझ गया है। कहीं पूंजी श्रम से उलझ रही है, कहीं श्रम पूंजी से उलझ रहा है। इस उलझे ताने बाने को देख कबीर बेचारे सिर धुन रहे हैं।

जहां ज्ञान हतोत्साह होकर बैठ जाता है, वहां भावना आगे बढ़ती रहती है। सारे महाभारत में बड़े बड़े महारथी कभी न कभी हतोत्साह हुए, एक कृष्ण ही ऐसे रहे जिन्हें निरुत्साहिता ने कभी नहीं घेरा। कृष्ण ने ज्ञान को भावना से अलग करके कभी नहीं देखा परखा। यदि ज्ञान और भावना में असामञ्जस्य होता तो भगवान् कृष्ण युद्ध भूमि में गीता का उपदेश कभी न दे पाते।

हमारे कथा पुराणों में भावना को ही जीवन की स्फूर्तिदायिनी शक्ति दरसाया गया है। पण्डित का थोथा ज्ञान जहां पहुंच न सका,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धन्ना जाट की भावना वहां जा पहुंची । भगवान् को हल जोतना पड़ा और खेत सींचने पड़े, तभी उन्हें किसान के घर भोजन मिला ।

गांधी जी कहते थे कि भारत गावों और किसानों का देश है। इसी देश में जब हम नवनिर्माण की ओर अग्रसर हो रहे हैं तब भी पूंजीपति भगवान बने बैठे हैं। उन्हें सोचना यही चाहिए कि जब तक उनकी पूंजी खेतों में उतर कर हल की मूठ नहीं पकड़ती और खेत नहीं सींचती तब तक धन्ना की साधना निरन्तर चलती रहेगी । श्रम भी यह मत भूले कि उसे धन्ना की परम्परा को ही निभाना है, महिषासुर या भस्मासुर नहीं बनना है। ऐसी चेतना यदि जागृत हो जाए तभी सही अर्थों में अटूट और अजेय भावनात्मक एकता स्थापित हो सकेगी।

चीन के आकस्मिक और अप्रत्याशित अभ्याक्रमण से देश जिस संकट में से गुज़रा है उससे भावनात्मक एकता का वातावरण बना अवश्य है, परन्तु उस वातावरण को श्रम और पूंजी में सामञ्जस्य स्थापित किए बग़ैर बनाए रखना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। श्रमिक और किसान इसलिए विक्षिप्त है कि उस का श्रम देश का उत्पादन तो बढ़ाता है परन्तु उसकी भूख और बेरोज़गारी को पूर्णरूपेण मिटा नहीं पाता। पूंजिपति इसलिए उन्मादग्रस्त है कि संचय की अधिकता उसकी पाचन शक्ति को बिगाड़ रही है और उसे कृत्रिम उपायों से बनाए रखने के लिए मदिरा पात्र उसके होंठों से लगा रहता है। इस विक्षिप्तता और उन्माद की स्थिति में भावनात्मक एकता के गीत मानव मन के खण्डहरों में भटक रहे हैं।

सब से बड़ी बात यह है कि भारतीय नारी भावना की साक्षात् मूर्ति है। इसी नारी से हम कई शताब्दियों से, विक्षिप्तता और उन्माद में खिलौने की तरह खेलते आए हैं। इस निष्प्राण नारी में जब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तक हम पुन: त्याग और साधना द्वारा प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर पाते तब तक भावना के स्वरों का सजीव होना कठिन है।

इतनी गम्भीर समस्याओं और विघ्न-बाधाओं में भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। शायद इस बार ये समस्याएं और विकट-बाधाएं मानव को अधिक समुन्नत बनाने के लिए ही समुपस्थित हुई हैं। इस देश की आत्मा अत्यन्त सशक्त और अजेय है। हमें जन्म लेते ही 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ..' और 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' की शिक्षाएं घुट्टी में मिलती हैं। जीवन सतत प्रवाहित है, आत्मा अजर है, अमर है, जिसने चोला धारण किया उसे पुराना और फटा चोला उतारना अवश्य है।

चाहिए यही कि पुराना चोला उतारने से पहले हम नया और स्वच्छ चोला तैयार कर लें। जिस प्रवाहित जीवन की हम कड़ी हैं आने वालों के लिए उससे अधिक सबल और सशक्त कड़ी बनने की प्रेरणा छोड़ जाएं। जब मृत्यु दूत हमारा द्वार खटखटाए तो हम उसे, सुबह-सांझ, शरत् और बसन्त की रातों से, फल-फूल, दुःख-सुख और धूप-छांह के अनुभवों से भरा जीवन पात्र सहर्ष सौंप दें जो आने वालों के लिए उन्नत-भाल हो दिया जा सके। इसी मृत्यु दूत की खटखटाहट को सुनकर ही तो भारत की माटी की भावना टैगोर के शब्दों में गूंजी थी, "जा किन्छू मोर संचित धन एत दिनेर सब आयोजन, चरम दिने साजिये दिब उहारे मरण जे दिन आसबे आमार दुआरे।"

इस देश का 'जवाहर' शायद 'मरण जे दिन आसबे आमार दुआरे।' इस गीत की कड़ी को भूल नहीं पाता, तभी इन विषम परिस्थितियों और विकट विघ्न बाधाओं में भी सह-अस्तित्व, विश्व-मैत्री, राष्ट्रबन्धुत्व और विश्व-शान्ति की बातें करता है। लड़ता भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है तो गीता के निष्काम कर्मयोगी की तरह, विक्षिप्त और उन्मादग्रस्त होकर लड़ना उसकी आदत नहीं।

नवाखली के सन्त की वाणी मरी नहीं है। एक और सन्त उसे भारत के ग्राम ग्राम में पिछले कई वर्षों से कहता गली गली, डगर-डगर घूम रहा है। टूटे साज़ उसने जोड़ लिए हैं, जिन भावनाओं को जनता ने लोक गीतों में सहेज लिया था वही गीत फिर से इस सन्त के दिल की तारों पर बज उठे हैं, वह आज भी कह रहा है 'मानव को सम्बुद्ध करो, मानव को सम्बुद्ध बनाओ' तभी प्रगति सार्थक होगी, ज्ञान और भावना में सामंजस्य होगा, मन और मन के बीच खाई मिटेगी, सौंदर्य और शिव सत्य की असीम राहों पर निरन्तर आगे बढ़ते रहेंगे।

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीप जले, राह चले

मेरे सहयोगी सरदार हरबंससिंह कह रहे हैं, 'आप गलत समझते हैं साहब, यह ठीक है कि दुनिया ज्वालामुखी के किनारे खड़ी है लेकिन पण्डित जी के रहते हरगिज़ जंग नहीं हो सकती। आर्टिस्ट ने बहुत दूर की बात सोची है, मैं उसकी कल्पना में आज की हक़ीक़त देखता हूं। आज देखते नहीं किस इतमीनान से अमन की फाख्ता दुनिया के जहन्नुम की आग से बचती-बचाती पण्डित जी के कन्धे पर आ बैठी है। पिकासो की फाख्ता पण्डित नेहरू के रहते किसी गोली से ज़ख्मी होकर तड़प तड़प कर दम नहीं तोड़ सकती, हरगिज़ नहीं तोड़ सकती।'

हर रोज़ की तरह आज भी हम मध्यान्तर में आफिस से उठ कर जैन साहिब के टी-स्टाल पर बैठे आफिस के बोझिल दिमाग पर राज-नीतिक चर्चा की बॉम मल रहे हैं। साथ की टेबिल पर चाय पीते एक सेठ जी कहते हैं, "कोरिया, हंगरी, क्यूबा, कांगों......यह सिलसिला दूर तक फैलता जा रहा है। चीन के हमले ने साबित कर दिया है कि अमरीका से दोस्ती के सिवाय कोई चारा नहीं। रूस हमारा दोस्त है लेकिन चीन का भाई है। पाकिस्तान और चीन की दोस्ती, डिक्टेटर-शिप और कम्यूनिज्म का गठजोड़? हमारी तो समझ में नहीं आता, दुनिया किस पाताल में ग़र्क होने जा रही है? पण्डित नेहरू के लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे दिल में निहायत इज्ज़त है लेकिन फिर भी मैं अर्ज़ करूं कि वे हक़ीकत पसन्द नहीं हैं।"

बीच में ही पड़ोस के एक कस्बे से आया बनिया बात लपक लेता है, "मैं कहता हूं सब एक जैसे हैं। अगर पण्डित जी अच्छे हैं तो सरदार कैरों के भ्रष्टाचार को क्यों नहीं रोकते? क्या कैरोंशाही के भ्रष्टाचार का नंगा नाच उन्हें दिखाई नहीं देता? मैं कहता हूं देहात में चल कर देखिए लोगों की क्या हालत है? मैं कहता हूं अगर महंगाई और भुखमरी इसी तरह बढ़ती गई तो मुल्क में गदर हो जाएगा।"

सिप करते हुए शर्मा कहता है, "भोले बादशाहो, धड़ा (ग्रुप) बड़ा कि धरम? किसे दिखाई नहीं देता कि क्या हो रहा है? टैक्सों के बोझ से दुनिया मरी जा रही है, मंहगाई ने कमर तोड़ दी, अशोका होटल और ताजमहल होटल की दुनिया में रहने वालों को दरम्याना तबका की हालत की क्या खबर? चीखे जा रहे हैं लेकिन कौन सुनता है? हां ग़दर की बात ग़लत है, हम इतने बुज़दिल और खुदगर्ज़ हो चुके हैं कि मरते मरते भी कुछ बोल नहीं सकते। कीड़ों की मौत मरना हमारा अंजाम है।"

मलहोत्रा बाहर से ग़मगीन चेहरा लिए भीतर आता है। अजीब-सी शोक से बोझिल आवाज़ में कहता है, "सरदार साहिब मैं एक ट्रेजिक न्यूज़ सुना रहा हूं।"

इतना कह कर खामोश हो जाता है। हम समझते हैं कि शायद मलहोत्रा की प्रमोशन रुक गई है। मैं और सरदार साहिब सवालिया अन्दाज़ में उसकी ओर देखते हैं। मलहोत्रा कहता है, रुक रुक कर बोलता है, "अब क्या होगा? पण्डित नेहरू की मृत्यु हो गई है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं बोल नहीं पाता। मेरी आंखें डबडबा आती हैं। सरदार जी चीखते हैं, "ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। किसी ने ग़लत खबर उड़ाई है, उसका मुंह तोड़ देना चाहिए। तुमने क्या खुद खबर सुनी है ? जानते हो गलत खबरें उड़ाना जुर्म है ?"

सेठ जी भर्राई आवाज़ में कहते हैं, "इस तलख नुक्ताचीनी और गलतियों की बौछार को मुस्करा कर सहने वाला हमें तो पण्डित जी के बाद कोई दिखाई नहीं देता।"

शर्मा जी की आंखों में सावन उमड़ पड़ा है, "आखिरी उम्मीद भी गई। अब क्या होगा ?" रुलाई रोकते हुए शर्मा जी कहते हैं।

कस्बे का बनिया अचानक बोल उठता है, "वाह ओए चाचा नेहरू, आखिर मुल्क को किस के आसरे छोड़ गया ?"

जैन साहिब ने रेडियो ऑन कर दिया है। गलत खबर हक़ीक़त बन चुकी है। सरदार जी अजीब सी दर्द भरी आवाज़ में कहते हैं, "अब अमन की फाख्ता किस कन्धे पर बैठेगी ?"

कुछ देर रुक कर बोलते हैं, "यह दुनिया कनेडियों और नेहरुओं को कहां सम्भाल सकती है .."

सरदार साहिब कुछ कहते हैं लेकिन मुझे कुछ भी सुनाई नहीं देता। रेडियो से वेद मन्त्र, गीत, श्लोक गुरुवाणी, कुरान की आयतें और धर्मवाणियां प्रसारित हो रही हैं, मुझे कुछ सुनाई नहीं देता।

अचानक कहीं से तैरती-तैरती 'नीरज' की कविता की पंक्तियां मेरे मस्तिष्क में आ फंसती हैं, मन में निरन्तर गूंजे जाती हैं, मन को मथे जाती हैं :—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"मैं न बंधा हूं देश-काल की जंग लगी जंजीर में,
मैं न खड़ा हूँ जाति-पाति की ऊंची नीची भीड़ में,
मेरा तो आराध्य आदमी, देवालय हर द्वार है,
कोई नहीं पराया, मेरा घर, सारा संसार है।"

मध्यान्तर समाप्त हो चुका है। हम सभी सिर झुकाए यन्त्रचालित से टी-स्टाल से उठ खड़े होते हैं। आफिस की ओर विचारों में खोए खिचरने लगते हैं। दुकानों के आगे भीड़ जमा है, शोकमग्न लोग पत्थर के बुत बने रेडियो द्वारा प्रसारित शोक समाचार सुने जा रहे हैं। कहीं चौराहे पर या सड़क चलते चलते लोग बात करते हैं, दुकानें खटाखट बन्द हो रही हैं, सारा राष्ट्र इस क्षण केवल एक आदमी की बात कर रहा है जो नहीं रहा, जो नहीं रह कर भी रहेगा, जो जा चुका है लेकिन जा कर भी जा नहीं पाएगा। जो जाते जाते भी हर धड़कन में हर सांस में समा गया है क्योंकि कोई भी सांस उसके बग़ैर जी नहीं सकती।

आफिस बन्द हो गया है। मैं बवण्डर के तिनके सा उड़ता शोक-सभा में पहुंच गया हूं। स्थानीय नेता, सामाजिक अग्रगण्य व्यक्ति, संस्थाओं के प्रमुख अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कर रहे हैं। कभी कभी एक आध वाक्य कानों में पड़ जाता है, मैं पुनः अपने विचारों में डूब जाता हूं, फिर जैसे चौंक कर उठता हूं और श्रद्धांजलियों को सुनने का प्रयत्न करता हूं परन्तु फिर खो जाता हूं।

एक वाक्य कानों में पड़ा है, "पण्डित जी सब के अपने थे" आगे सुन नहीं पाता। मेरा मन गीता के श्लोक में डूब जाता है, निकलना नहीं चाहता :

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फिर एक वाक्य सुनता हूं, "नेहरू स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी थे।"

आगे सुनाई नहीं देता क्योंकि गोरखपुर जेल के सीखचों के पीछे से बोलते १९४० के पण्डित जी दिखाई देते हैं, "मैं नेता नहीं हूं। इस क्षण मैं एक प्रतीक हूं उस राष्ट्रीयता का जिसने ब्रिटिश गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ कर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय किया है।"

शोक सभा में कोई कह रहा है, "पण्डित जी को सत्य की अजेय शक्ति में विश्वास था।"

मेरे मन में प्रतिध्वनि होती है, "पण्डित जी सत्यान्वेषी थे, विकास शील सत्यपथ के अविचल राही थे।"

न जाने पण्डित जी की कौन सी पुस्तक है, परन्तु पन्ने मेरे सम्मुख फरफरा रहे हैं। उन्हीं पन्नों में पण्डित जी का चेहरा झांक झांक जाता है। चेहरा बोलने लगता है, "मेरी राजनीति विशेष वर्ग, पूंजी-पति वर्ग की राजनीति रह जाती। १९२० में मैं खेत मज़दूरों और कारखाने के मज़दूरों की हालत से बेखबर था। फिर मैं अनचाहे ही इस तूफान में फेंक दिया गया जिसमें किसानों और खेत मज़दूरों के सम्पर्क में आना पड़ा। इलाहाबाद की दो सप्ताह की ज़िन्दगी में मैं किसान आन्दोलन मे उलझा लिया गया और कटु यथार्थ, तलख हक़ीकतें सामने आईं। उन किसानों की दुःख भरी ज़िन्दगी और नेताओं में अटूट विश्वास को देख मैं शर्म और दुःख में डूब गया। शर्म मुझे अपने सुखमय जीवन पर आई जिस में सुख सुविधाएं भरपूर थीं और उस राजनीति पर शर्म आई जिस ने शहरों के संकुचित क्षेत्र में फंस कर भारत माता के पुत्र और पुत्रियों की अवहेलना की थी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्हें नज़रअन्दाज़ किया था और भारत के पतन तथा गरीबी को देख कर मैं दु:ख में डूब गया। मेरे आगे सचाई की एक नई तस्वीर ज़ाहिर हुई यह उस भारत की तस्वीर थी जो अधनंगा, भूखा, कुचला मसला और दरिद्र भारत था। लेकिन इन भूखे नंगे लोगों को हम में अटूट विश्वास था, जो शहरों में रह कर अपनी संकुचित राजनीति के गोरखधन्धे में उलझे रहते थे और इस विश्वास ने मुझे नए उत्तर-दायित्वों का, नई ज़िम्मेदारियों का अहसास कराया..."

श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कोई कह रहा है, "पण्डित जी के बटन होल में अब लाल गुलाब नहीं मुस्कराया करेगा।"

मुझे दिमाग १९४२ में खींच कर ले गया है। जेल में मौलाना आज़ाद ने कहा, "बेकार बैठे तो वक्त नहीं कटता।"

पण्डित जी ने स्कीम सुझाई क्यों न जेल के अहाते में फुलवारी लगाई जाए। फिर पण्डित जी फुलवारी लगाने में जुट पड़े और एक दिन उसमें से विभिन्न रंगों के आकर्षक फूल मुस्करा उठे। जेल की हवा महकने लगी, दूसरे साथियों को महकाने लगी। यह फूल खिलाने का सिलसिला ज़िन्दगी भर न रुका और एक दिन भारत मां की फुलवारी में भाखड़ा बांध फूल खिल उठा और ऐसे ही कितने और फूल महकने लगे। अचानक मेरे दिमाग में 'नीरज' की एक और कविता की पंक्तियां तैर आई हैं :

"किन्तु झगड़ा खतम इस तरह यह हुआ—
फूल झरता रहा धूल खिलती रही।"

किसी ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है, प्रधान मन्त्री, सूक्ष्मदर्शी और समदर्शी थे।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे दिमाग़ में पार्लियामैन्ट में सन् १९५० में बोलते प्रधान मन्त्री की तस्वीर उभर आई हैं, "हमें अपनी ओर से सुदृढ़ रहना है, सुरक्षा के लिए तत्पर रहना है, पूरी और मुकम्मिल तैयारी करनी है लेकिन पाकिस्तान की ओर हमारी दृष्टि मित्रता की है। पाकिस्तान और भारत की भौगोलिक परिस्थितियां और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ऐसी है कि इनका आपस में दुश्मन बने रहना कठिन है। अगर वे ऐसा करेंगे तो मुसीवत पर मुसीबत टूटती रहेगी और या तो वे एक दूसरे को तवाह कर देंगे या एक दूसरे को तवाह कर देगा और ऐसे नतीजे भुगतने के लिए बचेगा जिस की कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

एक वाक्य कान में पड़ा है, "प्रधान मन्त्री भारत के सशक्त प्रहरी थे।"

मेरा मन सन् १९४७ की १४-१५ अगस्त की मध्यरात्रि की पण्डित जी की आवाज़ सुन रहा है, "इस अमूल्य अमर क्षण में जबकि भारतवर्ष अनन्त कष्टों के मार्ग से गुज़र कर और अनगिनत बलिदानों के पड़ाव पार करता हुआ स्वतन्त्र हुआ है—हम तकलीफ़ात और कुर्बानियों की मंज़िलों से गुज़र कर आज़ाद हुए हैं—मैं हिन्दुस्तान की कॉन्स्टीट्यूएन्ट असैम्बली के मैम्बर के नाते पूर्ण विनम्रता से अपने-आप को भारत और भारत की जनता की सेवा के लिए अर्पित करता हूं। मैं अपनी आखिरी सांस तक इस सेवा में निमग्न रहूंगा ताकि यह प्राचीन भारत विश्व में अपना उचित पद ग्रहण कर सके और विश्व-शान्ति तथा मानव प्रगति में अपना सम्पूर्ण तथा स्वतन्त्र योगदान दे सके।"

शायद वही वक्ता श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं, "प्रधान मन्त्री, अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के धुरन्धर ज्ञाता थे। राजनीति उनका लक्ष्य नहीं थी विश्व कल्याण का साधन मात्र थी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे १९४७ में 'फर्स्ट एशियन रिलेशन्ज़ कान्फ्रेंस' नई दिल्ली में बोलते हुए पण्डित जी सुनाई दे रहे हैं, "यूरोप और अमेरिका ने इन्सानी तरक्की में बहुत बड़ा रोल अदा किया है और उसके लिए हम उनकी तारीफ और इज्ज़त किए बगैर नहीं रह सकते, अभी हमें उनसे बहुत कुछ सीखना है। लेकिन यह भी बात भुलाई नहीं जा सकती कि पश्चिम ने हमें युद्धों में झोंका है, अनगिनत राजनैतिक झगड़ों में उलझाया है और आज भी एक भयंकर संहारक युद्ध के बाद इस अणु युग में अन्य विध्वंसकारी युद्धों की चर्चा हो रही है।...अमन तभी क़ायम हो सकता है यदि राष्ट्र स्वतन्त्र हों और जब हर जगह इन्सान आज़ाद हो, सुरक्षित हो, उसके लिए समुचित अवसरों और साधनों के द्वार खुले हों। इसलिए अमन और आज़ादी को राजनीतिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में ही देखा जा सकता है। हम संकुचित राष्ट्रवाद के समर्थक नहीं हैं। हर राष्ट्र को विकसित होने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए लेकिन इस शर्त के साथ कि कोई राष्ट्र किसी अन्य पर आक्रमण न करे और अन्तरराष्ट्रीय विकास में अड़चन न बने।... ...एशिया के लोगों की अफ्रीका की जनता की ओर भी ज़िम्मेदारियां हैं ताकि अफ्रीका मानव समाज में उचित स्थान ग्रहण कर सके...।"

फिर किसी ने शोक-सभा के मंच से कहा है, "पण्डित जी भारत की सभ्यता और संस्कृति के रक्षकों और उसे अग्रसर करने वालों में अग्रणी थे।"

पण्डित जी का गम्भीर अध्ययनरत चेहरा 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' के पन्नों में से झांक रहा है, "प्रत्येक स्थान पर मैंने देखा कि सभ्यता और संस्कृति की परम्परा ने भारतीय जीवन को प्रभावित किया है। यह परम्परा दर्शन, रीति रिवाज, इतिहास, पुराण किंवदन्तियों का अद्भुत संमिश्रण है जिसके मध्य किसी स्थल पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीमा रेखा खेंचना असम्भव है। नितान्त निरक्षर और अनपढ़ भी इस महान् परम्परा के सांझीदार हैं।...आज भारत में चालीस करोड़ स्त्री पुरुष अपने व्यक्तिगत घेरों में बसते हैं—प्रत्येक का परस्पर मत-भेद है, हरेक का समझ और अनुभूतियों का अपना दायरा है। फिर भी कोई ऐसी शक्ति है जिस ने इन नितान्त पृथक् इकाइयों को बांधे रखा और और अब भी बांधे है। भारत का भौगोलिक और आर्थिक अस्तित्व है और पृथक् इकाइयों के मध्य सभ्यता और संस्कृति का सशक्त सूत्र इन्हें परस्पर जोड़े हुए है। बार बार पराजित होने पर भी भारत की आत्मा कभी पराजित नहीं हुई और आज भी जब भारत महान् साम्राज्यशाहों की कठपुतली प्रतीत होता है यह अपराजित और अपरास्त है।"

फिर किसी वाक्य को सुन कर सन् १९६२ के पण्डित जी 'विश्व-भारती' के साहित्यिक मंच से बोलते सुनाई देते हैं, "युद्ध बहुत बुरी चीज़ है। युद्ध मानव की बुराइयों और कुरूपताओं को प्रोत्साहन देता है। किसी अंश तक युद्ध पराक्रम और बलिदान की भावनाओं को भले ही प्रकट करे लेकिन इस युग या किसी भी युग का युद्ध व्यक्ति, गुट या राष्ट्र का पाशवीकरण करता है। घृणा बहुत बुरा साथी है।......

दूसरा बुरा साथी है भय। अभाग्यवश आज के युग में भय और घृणा की अनुभूतियां मानव को सभी अन्य अनुभूतियों की अपेक्षा अधिक ग्रसे हैं। शीत युद्धों का मूलभूत कारण घृणा और भय है। मैं समझता हूं हमने अपने स्वतन्त्रता संग्राम में इस भय और घृणा को बहुत अंश तक जीत लिया था और यह हमारे संघर्ष का अनुपम पहलू था। क्या इस पहलू को हम अब भी सहेज सकते हैं? क्या हम इस भय और घृणा तथा तज्जनित व्याधियों के शिकार हो जाएंगे?...

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब हम आक्रामक के विरुद्ध अपनी सुरक्षा और स्वतन्त्रता के लिए लड़ते हैं तब भी किसी सभ्यता के विरुद्ध नहीं लड़ते जो हमारी ओर मैत्रीभाव रखती है। यदि कोई देश आक्रमण करे तो हम उसका मुकाबला करेंगे लेकिन उस देश की सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध लड़ना 'विश्व भारती' के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा।''

टैगोर के गीत की कड़ी मेरी स्मृति के नील गगन पर बदली की तरह छा आई है, "वैराग्य साधने मुक्ति, से आमार नय-असंख्य बन्धन-माझे महानन्दमय...।"

शोक सभा समाप्त हो गई है। शोक समाप्त नहीं हुआ। लोग आपस में बातें करते हुए उठे हैं "भारत ज्योति बुझ गई" कोई कहता है।

मुझे ३० जनवरी १९४८ के दिन बापू के महाप्रयाण पर, जवाहरलाल नेहरू का राष्ट्र के नाम सन्देश याद हो आया है। मैं मन ही मन उसे दोहराता हूं, "उस दिवंगत आत्मा के लिए यही महान् प्रार्थना होगी कि हम सत्य पथ पर चलने की, उस लक्ष्य की ओर बढ़ने की जिस के लिए हमारे देश के इस महान् सपूत ने प्राणों को न्योछावर कर दिया, शुद्ध मन से शपथ ग्रहण करें। यही सब से पवित्र प्रार्थना है जिसे हम भारत और राष्ट्र के प्रति समर्पित कर सकते हैं।"

एक अनुपम, सुमधुर, सुरभिमय, सुवासित पुष्प जो आज से बहुत साल पहले भारत मां के उद्यान में खिला था, जिसे जेल के आंगन में भी खुशबू बखेरनी आती थी, रेगिस्तानों की तपती रेत पर हरा मखमली गलीचा बिछाना आता था, जो अमीर और गरीब के मन में, महल और झोंपड़ी में एक समान पूजा जाता था, जिसे समाज-वाद की हवाएं रास आती थीं, जो भयंकर युद्धों के वज्रपात को अपनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनमोहक मुस्कानों से रोका करता था, जिस फूल को मां बहनें अपने गीतों में गूंथा करती थीं और जिस की सुवास के लिए देशदेशान्तर प्रतीक्षारत रहते थे, जो सभ्यता, साहित्य, संस्कृति के प्रांगण की अनोखी शोभा था, उसी फूल को गंगा-जमना की लहरों में विसर्जित कर दिया गया है, उसकी धूल खेतों, खलिहानों और समाजवाद की राहों पर बरसी है। गंगा जमना का पानी युगों की साध सीने में समेटे समाजवाद को ओर बढ़ रहा है। यही सोचता हूं कि जिन दीपों को इस दीप ने छू दिया है वे जलते रहेंगे, जिन पथों पर यह धूल बरसी है वे कभी नहीं रुकेंगे, जिस उद्यान में बहुंत साल पहले एक अनुपम फूल खिला था उसी उद्यान में और भी अनुपम फूल खिलेंगे।

रवि ठाकुर का गीत फिर स्मृति में छा आया है :—

''प्रदीपेर मतो समस्त संसार मोर लक्ष वर्तिकाय
ज्वालाये तूलिबे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मन्दिर-माझे।
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिवे फलिया—''

इसी के साथ 'दिनकर' की कविता-पंक्तियां आ जुड़ी हैं :—

''समर शेष है, इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा,
जिसका है यह न्यास, उसे सत्वर पहुंचाना होगा।''

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भटकनों के उजाले में

"लोकराज्य ? मुझे तो यह भी मालूम नहीं कि 'लोकराज्य' से तेरा तात्पर्य क्या है ? मुझे सन्देह है कि तू स्वयं भी इस शब्द के अर्थ जानता है या नहीं ?" वृद्धा ने गम्भीर निश्वास छोड़ते हुए भविष्य में झांकते हुए कहा, मानो अपनी सामर्थ्य तथा लक्ष्य की दूरी का फासला नाप रही हो।

मैंने वृद्धा की ओर इस बार गौर से देखा। युगों के अन्धकार से ग्रसित मन की परछाइयां उसके चेहरे से झांक रही थीं। पल-पल काल-नदी के पानी ने उसके एड़ियों तक लटके केशों को रूपा बना दिया था। उसके माथे पर अनगिनत लकीरें थीं जिनमें अनेक सदियों की गंगा जमना की आंखों देखी कहानियां बोल रही थीं, वीरता की, भक्ति रस की, प्रेम की और साथ ही कायरता की, घृणा की, क्रोध और द्वेष की तृष्णा और लोभ की, दर्प और दमन की अनगिनत कहानियां। जब वृद्धा बोलती तो माथे की लकीरें उसकी वाणी से कहीं अधिक जतला जातीं। फिर भी वृद्धा की आंखों में चमक थी, मानो कोटि कोटि सूर्य उसकी आंखों में आ विराजे हों। काल की गतिमयता ने उस चमक को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर बना दिया था। वृद्धा अब भी युवती की तरह चल पाती थी परन्तु जहां भी वह चरण रखती वहीं शालीनता और विनम्रता की, दया और ममता की पग-छाप छोड़ जाती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे अपनी ओर गौर से देखते हुए देख वृद्धा अद्भुत करुणामयी मुस्कान बखेरती हुई बोली थी, बहुत बूढ़ी नहीं हुई हूं अभी। ये गंगा-जमना, जिन का वर्णन तुम्हारे पूर्वज वेदों और पुराणों में कर गए हैं, दोनों मेरी बेटियां हैं। हिमालय, पिछले दिनों जिसके सीने में 'कन्फ्यूशियस' और 'लाओत्से' के देश के लोगों ने लोकराज फैलाने के नशे में गोलियां दाग दी थीं, मेरा बेटा है और जिस मां के बेटे बेटियां अमर हों वह क्या कभी मर सकती है या कभी थक हार कर बैठ सकती है ? मेरी गोद में तो नन्हे मुन्ने, शेरों के बच्चों के साथ खेलते रहे हैं।" बोलते बोलते भारत मां रुक गई।

फिर न जाने अतीत की किन स्मृतियों में झांकती हुई बोली, "एक बार मैंने अपने एक पुत्र को एक कहानी सुनाई थी जिसे सुनकर वह भागीरथी को स्वर्ग से मेरे पास बुला लाया था। उसके आते ही अनेकों शापमुक्त हो गए थे। कहानी लम्बी है, फिर भी मतलब की बातें तुझे बताती हूं क्यों कि सुनने सुनाने में ही कहीं काल नदिया और आगे न सरक जाए।"

कहते कहते एक दिव्य आशा से भारत मां की आंखें चमक उठीं थीं, बोली, "उसी दिन की प्रतीक्षा कर रही हूं, बेटा ! जिस दिन लोकराज्य तुमने ला दिया उसी दिन मेरे चेहरे की सब झुर्रियां और माथे की विषाद रेखाएं मिट जाएंगी। लोक-राज्य तक पहुंचने की राह कठिन अवश्य है, परन्तु साधना और तपस्या तो असम्भव को भी सम्भव बना देती है। फिर मैं जो कहती हूं वही तेरे लिए अन्धेरे बीहड़ पथों का प्रकाश बनेगा।"

भारत मां ने टूटी कड़ी को जोड़ते हुए कहा, "बेटा, लोकराज्य की बुनियादें व्यक्ति के मन के भीतर से उठती हैं। जब-जब बाह्य आधारों से ही इन बुनियादों को उठाने का प्रयत्न किया गया तब-तब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोकराज्य की आलीशान इमारतें भहरा कर गिर पड़ीं और उन्हीं खण्डहरों में से राजाओं-रजवाड़ों की हकूमतें अधिनायक-तन्त्र उठ खड़े हुए। इस अन्तर की साधना के अभाव में प्रजातन्त्र बिखर गए, सामञ्जस्य के सूत्र टूट गए और भग्नावशेषों में से नादिरशाहियां और नाज़ीवाद हाथों में तलवारें और बन्दूकें लिए निकल पड़े।"

मां के मन में सदियों के इतिहास जाग उठे थे। एक ही सांस में कहती चली गई, "व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता। तभी उपनिषद् में किसी साधक ने कहा था, 'एकाकी न रमते।' व्यक्ति को भले ही किसी आलीशान इमारत में अकेला छोड़ दो तो वहीं पागल हो जाए। व्यक्ति चाहता है कि समष्टि में व्याप्त होकर रहे। फिर साधना के अभाव में समाज की विभिन्न इकाइयां उठ खड़ी होती हैं। इकाइयों का उठना बुरा नहीं, परन्तु भय और लोभ सामञ्जस्य को निगल जाते हैं, एक इकाई दूसरी इकाई को हड़पना चाहती है। अपने को अपने से भय लगने लगता है। 'द्वितीयाद् वै भयं भवति' जिस दूसरे के अभाव में जीना दूभर था वही भय का कारण बनता है। विश्व की एकता के स्थान पर फिर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से, एक जाति दूसरी जाति से, एक कबीला दूसरे कबीले से, एक गण दूसरे गण से लड़ता है। एक दूसरे को हड़प लेना चाहता है। यह भूल जाता है कि हड़पने की भावना ही लोकराज्य के निर्माण में महान बाधा है।

यही हुआ है। पहले व्यक्ति हिंस्र पशुओं से घबरा कर समूहों में परिवारों मेंइकट्ठा हुआ, फिर यही समूह लड़े। एक कबीला दूसरे कबीले की स्त्रियों को और पुरुषों को जीत कर उन्हें अपना दास बनाता। उन्हें बेचता, खरीदता। लेकिन कबीले के अन्दर अपनी सुविधा के लिए अनुशासन भी चाहता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वैदिक आर्य अपने दलों को 'जन' कहते थे। प्रधान इनमें से थे अणु, द्रुह्य, तुर्वस और पुरु। ये जन सरस्वती के दोनों किनारों पर रहते थे। 'मा विद्विषावहै' के मन्त्र पढ़ने वाले जन आपस में सत्ता के लिए लड़ भी पड़ते। एक बार वसिष्ठ और विश्वामित्र के आपसी झगड़ों के कारण इन 'जनों' की लड़ाई हुई थी।

वैदिक राष्ट्र का आधार 'गृह' था। गृहों के समूह को 'ग्राम' कहते थे और 'ग्रामों' के समूह को 'विश्' और विशों के समूह को 'जन'। 'जन' का मुखिया राजा होता था। साधारण जनता 'विश्' कहलाती जो राजा को चुना करती। फिर धीरे-धीरे बड़े राज्यों का विकास परिस्थितिवश होता गया। फिर राजाओं की शक्ति बढ़ती चली गई, परन्तु जनमत भी अपनी शक्ति को खोना नहीं चाहता था। एक बार दुष्टऋतु नामक राजा को प्रजा ने मार डाला था।

समय कब रुका है! व्यक्ति की सुविधा तथा स्वतन्त्रता पाने की लगन अटूट थी। बुद्ध के जीवन-काल में गणतन्त्र बन गए थे। हां! लोग उन्हें गणतन्त्र ही मानते थे। हालांकि उन्हीं गणतन्त्रों में सब से सुन्दर लड़की को नगरवधू बनने के लिए विवश कर दिया जाता। काल और परिस्थितियों की अपनी सीमाएं होती हैं। शाक्य, पावा, मल्ल, लिच्छवि गणों में प्रसिद्ध थे। मगध की राज्यशाही से सुरक्षा के लिए लिच्छवियों और वज्जियों ने दूसरे गणों को साथ लेकर वज्जी संघ बनाया था। परन्तु इतना विशाल और महान संघ आपसी फूट तथा अपनी कुछ बुराइयों के कारण मगध साम्राज्य के मुकाबले में ठहर न सका।

इन संघों का प्रशासन पंचायती तथा प्रजातान्त्रिक ढंग से होता। जिस जगह लोक सभा जुटती उस पार्लियामैंट हाऊस को 'संघागार'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहते । सदस्यों को बैठाने का काम 'आसन-प्रज्ञापक' का होता । 'कोरम' की व्यवस्था का उत्तरदायित्व 'गणपूरक' का था । प्रस्ताव को 'प्रतिज्ञा' कहते थे । मत को 'छन्द' । 'छन्द' का निर्णय 'शलाका' द्वारा होता था ।

फिर दूसरी सभ्यताएं और दर्शन इस धरती पर आए । ईरानी सभ्यता ने साम्राज्यों को महत्त्व दिया । प्रान्तों की इकाइयां बना कर साम्राज्य की स्थापना करने की शिक्षा चन्द्रगुप्त मौर्य ने ईरानी सभ्यता से ही ग्रहण की । भारत का एक और सम्बन्ध ग्रीकों से हुआ । चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर की विजय को मिटा दिया, परन्तु ग्रीक सभ्यता अपना प्रभाव डालती रही ।

सिकन्दर ने अपने पिता फिलिप की तरह जो कि अमिन्तस का बेटा था जमहूरियत को ओढ़ना तो चाहा लेकिन उस भेड़िए की तरह जो मेमने का लिबास पहर शिकार को निकलता है । और, जब उसकी साम्राज्य लिप्सा को प्रजातन्त्र का फलसफा रास न आया तो सिकन्दर के एक ही इशारे पर कालस्थनीज़ का सिर धड़ से जुदा कर दिया गया । अरस्तू का भी वही हश्र होता यदि वह समय पर बच न निकलता ।

अरस्तू का आचार्य प्लेटो भी अपने 'रिपब्लिक' के सपने को साकार नहीं कर पाया था । क्योंकि 'सिराक्यूस' के शाह 'डायोनिसियस' की सन्देही और शंकालु प्रवृत्ति को 'प्लेटो' के दार्शनिक के स्थान पर षड्यन्त्रकारी दिखाई दिया था । अपने गुरु की तरह ही 'अरस्तू' को एशिया माइनर का हरमिअस मिला जो अरस्तू के प्रजातान्त्रिक दर्शन का लबादा ओढ़ कर अपनी लूट खसोट को स्थिर रखना चाहता था । फिर अरस्तू, सिकन्दर के पिता फिलिप के पास पहुंचा जो कि हरमिअस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से बर्बरियत के मामले में कई क़दम आगे था। अगर प्लेटो और अरस्तू को ऐसे राजा मिले होते जो उन्हें कठपुतली बना कर नचाना न चाहते तो लोकतन्त्र के भाग्य की रेखाएँ शायद कुछ और होतीं।

प्लेटो चाहता था धन और सम्पत्ति पर से व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर दिया जाए। सब की सांझी मलकीयत हो। कई मामलों में वह अतिवादी भी था। वह यहां तक चाहता था कि विवाह-सम्बन्ध जैसी बात न रहे। पुरुष स्त्री का मिलाप बलवान सन्तति के लिए ही हो। बच्चों के प्रति उत्तरदायित्व स्टेट का हो। वह सुदृढ़ सेना के पक्ष में था परन्तु केवल सुरक्षा के लिए।

अरस्तू ने लोकतन्त्र को दूसरे दृष्टिकोण से देखा। वह चाहता था कि प्रत्येक को अपनी सुविधा अनुसार धन कमाने के, अपने ढंग से रहने के साधन प्राप्त हों परन्तु प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति एक सुनियोजित ढंग से परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए और सामूहिक उन्नति के लिए प्रयोग में लाई जाए। वह कहता 'जिस कार्य के लिए सामूहिक उत्तरदायित्व हो वह किसी का भी उत्तरदायित्व नहीं रहता।' वह कहा करता, "तुम सम्पत्ति को सांझा बनाने की अपेक्षा यह आशा करो कि व्यक्ति के गुण, व्यक्ति का चरित्र कम्यूनाइज़्ड (साम्य-आधारित) हो जाएं।" वह चाहता था कि लोगों में से, लोगों द्वारा, लोगों के हितार्थ चुनी शासन-व्यवस्था का सब से प्रमुख कार्य पारस्परिक सहयोग, साम्य और सामञ्जस्य स्थापित करना हो।"

भारत मां बोलते-बोलते कुछ देर ठहर गई। पुनः बोली, "मैंने कहा न! अभी व्यक्ति और समाज को साधना और तपस्या करनी है। इस दिशा में बुद्ध, महावीर, रैदास, कबीर, चैतन्य, रामदास जैसों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने प्रयत्न तो बहुत किए परन्तु वे एकांगी रह गए अतः पूज्य तो बने परन्तु लोकतन्त्र की स्थापना में उनकी उपादेयता आंशिक ही रही। फिर उस काल की, समाज की, व्यवस्था की अपनी सीमाएं थीं। साधन सीमित थे। अब तो दुनिया सिमट कर घर बन गई है। भारत के मन्त्री दिन का खाना यहां और रात का लन्दन या अमेरिका जा खाते हैं। रूस वाले कुछ घण्टों में भारत पहुंच जाते हैं। दुनिया के एक कोने की खबर पलक झपकते ही हर कोने में फैल जाती है। रथों और बैल-गाड़ियों पर सरकने वाला समय जहाज़ों और राकेटों पर उड़ा जा रहा है। विज्ञान ने दुनिया को एक घर बना दिया है। और, फिर ये राष्ट्र जिनकी गौरव-गाथा में मदान्ध हो लोग आपस में कटते मरते हैं ये राष्ट्र भी तो आखिर मानव-प्रगति की यात्रा के पड़ाव ही हैं। यदि लोकराज्य की सही स्थापना करनी है तो जातिवाद के घेरों की तरह राष्ट्रवाद के घेरों को भी फांदना होगा।

तुम चाहो या न चाहो एक देश की हवाएं दूसरे देश तक पहुंचती हैं। फ़्रांस की राज्य-क्रान्ति हुई तो उसका प्रभाव दुनिया पर बगैर पड़े न रहा। फ्रांस की क्रान्ति सही अर्थों में फलीभूत नहीं हुई, लेकिन फिर भी रूस की अक्तूबर क्रान्ति की मार्गदर्शिका बनी। विज्ञान ने अब सारी दुनिया के भाग्य को एक जगह ला खड़ा किया है। एटम और हाइड्रोजन फटते एक देश में हैं जहर विश्व भर में फैलाते हैं। विज्ञान की शक्ति बुरी नहीं है, स्वार्थी और लोलुप बन कर उस शक्ति का दुरुपयोग अक्षम्य अपराध है।

मैंने कहा कि रूस की क्रान्ति के लिए फ्रांस की क्रांति मार्गदर्शिका बनी तो उसी से यह भी स्वतः प्रमाणित है कि फ्रांस की क्रांति भी अपने समय के वातावरण, भौतिक परिस्थितियों और तज्जनित जन-असन्तोष से प्रचालित थी। पूंजीवादी कहता है 'मेहनत मज़दूर की,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्पत्ति लाभ मालिक का।' पूँज़ीवाद सौदेबाज़ी की कोख से जन्म लेता है, सट्टे की जल-वायु में पनपता फूलता है और जुए की छत्रछाया में जवान होता है। पूंजीवाद की सौदेबाज़ी संचय को, सट्टाखोरी भीख को और जुएबाज़ी चोरी को जन्म देती है। भ्रष्टाचार इन्हीं बुराइयों के खाद में पनपता है। अगर भ्रष्टाचार को हटाना है तो इन संचय, भीख और चोरी की बुराइयों को हटाना होगा।

पूंजीवाद के चरम विकास के लिए यन्त्रीकरण (इण्डस्ट्रियलाइज़ेशन) ने पृष्ठभूमि तैयार की थी। यान्त्रिक उत्पादन में व्यापारवाद-साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की प्रेरणाएं थीं, लेकिन अब तो इन सभी के चलाचली के दिन हैं। आज दुनिया चलते-चलते दो खेमों में आ जुटी है। एक साम्यवादियों का और दूसरा लोकशाही का। यह लोकशाही लोकराज्य की मरीचिका से अधिक नहीं हो पाई, क्योंकि यह लोकशाही साम्यवाद का विरोध करते-करते पूंजीवाद की उस छावनी में जा पहुंची है जहां संग्रह, भीख और चोरी आसन जमाए बैठे हैं। ऐसे में लोकराज्य की स्थापना मरीचिका बन कर रह गई है। यह लोकशाही ऐटम और हाइड्रोजन बमों की दासी और भोग-विलास की अर्पिता बन कर रह गई है। मानव-प्रवाह की गति इस लोकशाही में फंसकर कुण्ठित हो गई है। इस लोकशाही में सम्प्रदायवाद और जातिवाद के साथ साथ अधिकार का दुरुपयोग, गुण्डाशाही का भय और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। सही लोकराज्य में व्यक्तियों का नहीं वस्तुओं का नियन्त्रण होगा। शासन घटता जाएगा, अनुशासन बढ़ता जाएगा। सही लोकराज्य में स्वामित्व का निराकरण होगा। मैंने पहले ही कहा था कि साधना और तपस्या से असम्भव सम्भव बन सकता है।

पूंजीवाद जब अपने को अमर समझ 'रक्तबीज' की तरह दर्प में चूर होकर शैतानी नाच नाचने लगा तो एडम स्मिथ और रिकार्डो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'श्रम ही मूल्य है' की पताका फहराते आ पहुंचे । 'मिल' 'मार्शल' एक कदम और आगे बढ़े, 'रूसो' 'टालस्टाय' ने एक कदम और आगे बढ़ाया, परन्तु पूंजीवाद का 'रक्तबीज' क्षत-विक्षत हो शत-सहस्र गुणा भयंकर हो लड़ता रहा, दुनिया की प्रगति को आंखें दिखाता रहा और तब विश्व परिस्थितियों के गर्भ में से 'अतिरिक्त मूल्य' का सिद्धान्त लिए गरीबों का मसीहा 'कार्ल मार्क्स' आ पहुंचा। दान और गरीबों से हमदर्दी की बात तो युगों में पहले भी हुई थी, लेकिन गरीबी और अमीरी के निराकरण की बात मार्क्स से पहले किसी ने नहीं कही थी। 'रक्तबीज' की शक्ति को मां काली ने निगल लिया था 'पूंजीवाद' की दानवी शक्ति को 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त ने धरणीसात् कर दिया। फिर लेनिन ने रूस में मज़दूरों की डिक्टेटरशिप कायम की तो वह मानव-विकास के काफिले की बहुत बड़ी महत्वपूर्ण मंज़िल थी।''

भारत मां बोलते-बोलते थक गई थी। कुछ देर रुक कर बोली, ''लेकिन रूस का समाजवाद भी व्यक्ति की ईर्ष्या, क्रोध, घृणा और लोलुपता को जीत न सका। वहां भी लोगों को एक-दूसरे की कब्रें उखाड़ने से और मतभेद रखने वालों को गोलियों से भूनने से ही फुर्सत नहीं है। रूस के समाजवाद में और अमेरिका की लोकशाही में अभी इन्सान पद का भूखा है, लोगों को जायदाद समझ अपनी किस्मत संवारने के लिए मनचाहे ढंग से बांटता है, वासना में अन्धा हो नाचता है, धन के चाबुक से दुनिया को हांकने के लिए आज भी लोकशाही लाखों टन अनाज समुन्दरों में डुबाती है, खेतों में जलाती है जब कि दूसरी ओर एक-एक मुट्ठी अनाज के लिए तुम्हारी गंगा-जमना की बेटियां, तुम्हारी सीताएं और राधाएं इज्ज़त बेचने के लिए बाज़ारों में निकलती हैं। आज भी इन समाजशाहियों और लोकशाहियों में बमों और बारूदों की भट्ठियां गर्म हैं जब कि इन्हीं भट्ठियों में गोला बारूद और बमों की जगह इन्सान के लिए इसी धरती पर स्वर्ग उतार कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ला देने वाली मशीनें बन सकती हैं। बेटा ! क्या ही अच्छा हो यदि इन्सान इन्सान का खून बहाना भूल जाए ! मैं जिस लोकराज्य को देखने के लिए जिन्दा हूं उसमें तो इन्सान अपना खून औरों के लिए बहाया करते हैं। अपने लिए औरों के खून से होली नहीं खेला करते।" भारत मां ने सदियों की व्यथा के आंसुओं को पलकों की ढाल से रोक लिया।

दीर्घ नि:श्वास लेती हुई बोली, 'सन्तोष है तो यही कि मेरी आशा एक दिन अवश्य फलवती होगी। मानव थक कर न बैठा है न बैठेगा। थक हार कर बैठना उस का स्वभाव नहीं है। इन्हीं भटकनों के उजाले में मनु-पुत्र सदैव बढ़ता रहा है। कभी कभी रुकने का सा भ्रम होता है परन्तु गरल पी कर अमर होना मानव ने जान लिया है। भयंकर युद्धों के पेट में से ही शान्ति का जय-घोष गूंज उठा है। इन्हीं भटकनों के उजाले में एक दिन मनु-पुत्र सच्चे लोकराज्य तक अवश्य पहुंचेगा जहां प्रजा से अलग और ऊपर बैठने वाला राजा नहीं होगा। प्रत्येक सुविधा-सम्पन्न और स्वतन्त्रतापूर्ण होगा। आवश्यकता तप की है, दर्प और अहं को आस्था और प्रेम की अग्नि में समिधा बनाने की है।"

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संगीत, न जिसका आदि अन्त

बालक ने लट्टू पर डोरी लपेट एक झटके के साथ लट्टू को ज़मीन पर फेंक दिया है और लट्टू तीव्र गति से ज़मीन पर घूमने लगा है। लट्टू थमने के पहले बालक उसे उठाता है फिर डोरी लपेटता है और फिर तीव्र गति से घूमने के लिए ज़मीन पर छोड़ देता है। बात साधारण-सी है परन्तु न-जाने क्यों घूमते लट्टू को देखकर मेरे मन में स्वामी शंकराचार्य की वाणी गूंज गई है—

'पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्वकर्मणा।
समुत्पन्नमिदं स्थूलं भोगायतनमात्मनः।
अवस्था जागरस्तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः॥'

सोचने लगता हूं कि यदि पूर्वकर्मानुसार, पञ्चभूतों से उत्पन्न हुआ यह शरीर आत्मा का स्थूल भोगायतन है तो इसे सजाने, संवारने, इसका कल्याण करने की गुञ्जाइश कहां तक है और कल्याण करने वाली की अपनी सीमाएं कहां तक हैं ? फिर, जिसे हम 'कल्याण' कहते हैं उसकी परिभाषा क्या है ?

प्रत्येक व्यक्ति और समाज की, देश और काल के अनुसार अपनी सीमाएं होती हैं, उन्हीं सीमाओं में बंधा व्यक्ति जीवन को मानसिक सन्तोष के साथ जीना चाहता है यानी मानसिक शान्ति के लिए संघर्ष करता है और इसी संघर्ष के परिणाम स्वरूप परिवार, पारस्परिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्बन्ध, लेन-देन, नाते-रिश्ते और सामाजिक गठनों की आकृति बनती रहती है, बिगड़ती रहती और बिगड़-बिगड़ कर फिर बनती रहती है। साधारणतया जब हम बाल-कल्याण की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय बालक को मनोऽनुकूल सांचे में ढालना होता है, पिता चाहता है पुत्र उसके पदचिह्नों पर चले, समाज चाहता है कि वैयक्तिक इकाई उसके बनाए संगठन में, ढांचे में फिट बैठ जाए। आदर्श बालक हम उसे मानते हैं जो समाज के कायदे कानून को माने, माता-पिता का आज्ञाकारी हो और परिवार का भार वहन कर सके। दूसरे शब्दों में जब हम बाल-कल्याण की बात करते हैं तो अनजाने ही बालक के माध्यम से व्यष्टि और समष्टि अपने कल्याण की बात भी सोच रहे होते हैं। बालक का और माता-पिता का कल्याण, व्यक्ति और समाज का कल्याण अन्योन्याश्रित हैं, एक के बिना दूसरा लड़ाखड़ा जाता है।

'तुलसी' ने 'रामचरित-मानस' में आदर्श बालकों को चित्रित किया तो लव-कुश के बारे में यही कहा—'दोउ बिजई बिनई गुन मन्दिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहु अति सुन्दर।' वे दोनों ही विजयी (विख्यात योद्धा) नम्र और गुणों के धाम थे, यूं लगता, मानो श्री हरि के प्रतिबिम्ब ही हों। महर्षि वाल्मीकि ने भी, प्रतिबिम्ब वाली बात ही कही जब उन्होंने लव-कुश के लिए कहा 'बालचन्द्रप्रतीकाशौ देवपुत्रौ महोजसौ।'

कौन माता-पिता ऐसे हैं जो अपने बच्चे की बलायें अपने सिर न लेते हों तभी वाल्मीकि ने अपनी रचना में कहा 'भूतघ्नीं चाकरोत् ताभ्यां रक्षां रक्षोविनाशिनीम्।'

परन्तु काल-प्रवाह इसलिए है कि सत्य का मार्ग प्रशस्त होता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चले । अतः, फिर एक दिन ऐसा आता है कि बालक प्रतिबिम्ब बन कर ही सन्तुष्ट नहीं हो पाता, वह प्रतिबिम्ब से अधिक और कुछ बनना चाहता है या फिर वह जिस प्रतिबिम्ब को देखता आया है उस का रूप बदल देना चाहता है । 'मम पुत्राः शत्रुहणः' वेद-वाक्य में अगली कड़ी आ जुड़ती है 'अक्कोधेन जिने कोधं, असाधं साधुना जिने । जिने कदिरयं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ।' (क्रोध को अक्रोध से, असाधु को भलाई से, कृपणता को दान से असत्य को सत्य से जीते) ।

और होता यों है कि हम अपनी सीमित दृष्टि के कारण परम्परा की सीमा लांघते पुत्र को अशिष्ट और अनाज्ञाकारी समझने लगते हैं और वह हमारे दिए कल्याण को कई गुणा अधिक बनाकर लौटाने या ऋण उतारने की धुन मे हमारी क्रोध-भरी बातों को अमृत बनाकर लौटाने में जुटा रहता है । फिर वही नचिकेता जिसके कल्याण के लिए वाजश्रवा ने एक दिन कहा था, "हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्च्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः" परम्परा लांघते समय अपने पिता के मुख से क्रोध-भरी वाणी सुनता है । '······मृत्यवे त्वा ददामि····· ' और अमृत लौटाने की धुन में नचिकेता, यमराज से कहता है 'शांतसंकल्पः सुमनाः······' । पिता का परितोष मांगकर ही वह बस नहीं करता । काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार, पिताओं पर, आने वाली पीढ़ियों पर काठी न जमा सकें, अतः यमराज से कहता है 'वरस्तु मे वरणीयः स एव······'नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते······' देना है तो वही आत्मामृत दो कि फिर कभी मनु-पुत्र सत्य मार्ग से विचलित न हो ।

देश और काल परिवर्तनशील हैं, अतः मानव-मन अपरिवर्तित नहीं रह सकता । प्रत्येक आने वाली पीढ़ी परम्परा में नई कड़ी जोड़ कर परम्परा को परिष्कृत करती हुई प्रगति के हाथ सौंपती चलती है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह मार्ग सीधा-सपाट नहीं है और न ही इस राज-पथ के दोनों ओर छायादार वृक्ष और उद्यान सुशोभित हैं। प्रगति-पथ की ओर जाने वाली हर पगडण्डी कांटों से भरी होती है, कांटों से लदे झाड़-झंखाड़ पग-पग पर मानव-मन से उलझते हैं, उसे अटकाते हैं। लहूलुहान तलवों से घायल शरीर लिए व्यक्ति प्रगति-पथ पर बढ़ने को बाध्य है और यही शायद शिवत्व तक पहुंचने के लिए मनु-पुत्र को सबसे बड़ा वरदान है।

कई बार काम की मदिरा पीकर व्यक्ति लड़खड़ाने लगता है, लोभ में अन्धा होकर ठोकरें खाता है, क्रोध-ज्वर से पीड़ित होकर हाथ-पांव पटकता है, मोह में फंसकर आगे बढ़ना भूल जाता है और अहंकार में डुबकी लगाकर विष-पात्र स्वजनों के अधरों तक पहुंचा देता है। यदि ऐसा न होता तो ययाति पुरु की आयु न मांगता, वाजश्रवा नचिकेता को मृत्यु को न सौंपता, कंस नन्हें शिशुओं की हत्या न करता, दुश्शासन भरी सभा में द्रौपदी का चीर न हरता, मत्स्येन्द्र जैसा योगी न भटकता, शाहजहां जहांगीर के खिलाफ बगावत का झण्डा बुलन्द न करता और औरंगज़ेब शाहजहां को कैद में घुला-घुला कर न मारता। लेकिन जब-जब इन्सान घायल तन और टूटे मन से गिरने लगा है तभी 'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि', तसिणाय पुरुक्खता पजा परिसीप्पन्ति ससो व बधितो', 'सूली ऊपर सेज पिया की', 'विरहा तू सुल्तान', 'उस्तुति निन्दा दोऊ त्यागे' ने इन्सान को गिरने से बचाया है, नई प्रेरणा दी है।

जैसे बालक और माता-पिता, व्यष्टि और समष्टि का कल्याण एक-दूसरे पर अवलम्बित है उसी प्रकार यह भी सत्य है कि इस कल्याण मार्ग पर अस्वस्थ शरीर और रुग्ण मन से चल निकलना सर्वथा असम्भव है। पूर्व-कर्मानुसार पथ और दिशाएं निर्दिष्ट भले ही हों परन्तु अपने पुरुषार्थ से उन पथों को सुगम बनाना, उन दिशाओं को आलो-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कित करना व्यक्ति की सामर्थ्य में है। यदि ऐसा न होता तो प्रभु मनु-पुत्र के माथे पर पशुत्व से देवत्व तक की यात्रा का विजय-तिलक लगाकर पृथ्वी पर न भेजते। इतिहास के पन्ने कंसों, रावणों, अंगुलीमालों और नादिरों चंगेज़ों से रंगे होते। ध्रुव, प्रह्लाद. राहुल, हक़ीक़त और गुरु गोविन्दसिंह के लाडले कहीं दिखाई भी न देते। इतिहास की जगमगाहट बुझ जाती और गहन अन्धकार में आज भी इन्सान दरिन्दों की तरह एक-दूसरे पर लपका झपटा करता।

अस्वस्थ शरीर से स्वस्थ सन्तान की कल्पना करके मृगतृष्णा तक ही पहुंचा जा सकता है। इसीलिए वेदों के द्रष्टाओं ने मानव-यात्रा के पथ में प्रकाश-स्तम्भ निर्मित किए। उन्होंने राह सुझाई 'इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्' 'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति' यदि हम सही अर्थों में बाल-कल्याण, यानी अपना कल्याण चाहते हैं तो अपने भीतर झांक कर देखें कि कहीं हम अस्वस्थ शरीर से स्वस्थ सन्तान की इच्छा तो नहीं कर रहे ?

रोगी मन से आत्मतुष्टि के स्थान पर आत्म-वंचना ही मिलती है। आत्मवंचना द्वारा आप बालक को विक्षिप्तता तक ही पहुंचा सकते हैं, उद्विग्नता को राजसी वेष-भूषा बनाकर पहना सकते हैं। ऐसा बालक जब आपकी दी हुई वस्तु, आपको सजा-संवार कर लौटाता है तो आप सिर धुनने बैठते हैं। बाल-कल्याण की कल्पना सुगम है परन्तु इस पथ पर चलना किसी योगी की साधना से कम कठिन नहीं है।

घरों में हम भगवान की मूर्ति स्थापित करते हैं तो उसके सामने शरीर और मन को शुद्ध करने के पश्चात् उपासना के लिए बैठते हैं। हम भगवान् को बुरी वस्तु देने की कल्पना मात्र से कांप उठते हैं। जहां भगवान् की उपस्थिति का भाव है वहां पवित्रता स्वयं चली आती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। यदि हम घर में घूमते बाल गोपालों में भगवान् को पहचानना सीख जाएं तो उनके सामने कभी अश्लील आचरण न करें असत्य और कटु न बोलें। जब बालक बड़ा होकर अपने जीवन में हमारे बुरे व्यवहारों को ढालता है तो हम उसे कोसते हैं। यह भूल जाते हैं कि बालगोपाल को जो हमने दिया था वही कई गुणा होकर हम तक लौट रहा है। सद्गृहस्थ यदि भगवान् के साक्षात् दर्शन करना चाहता है तो बालक के सरल हृदय में, शिशु की पवित्र आंखों में उसे सहज ही ढूंढ सकता है।

मन की बात के साथ ही अवचेतन आ जुड़ता है। पाश्चात्त्य चिकित्सक और मनोवैज्ञानिक आज फिर अध्यात्म ज्ञान को समझने में जुटे हैं. क्योंकि 'फ्रॉयड' का दलित यौन प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया पर आधारित अवचेतन का सिद्धान्त; विशिष्ट पारिवारिक या सामाजिक परिस्थितियों द्वारा प्रदत्त हीन मनोभावना की प्रतिक्रिया पर आधारित 'एडलर' का दृष्टिकोण और 'युंग' का वैश्लेषिक मनोविज्ञान (ऐनेलिटिकल साइकॉलोजी) सभी मानव मन की गहराइयों को नापने के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं। 'युंग' ने भी यह तो स्वीकार किया ही है कि अवचेतन की अन्ध शक्तियों को सही दिशा दिखाने के लिए आध्यात्मिक शक्तियों को जगाने की आवश्यकता है, क्योंकि सारी मनुष्य जाति की आदिकाल से लेकर आज तक की जिन सामूहिक प्रवृत्तियों का दमन मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति द्वारा होता आया है वे सब या उनका प्रभाव मानव के अन्तर्मन में विद्यमान है।

समस्या का समाधान आत्मा को समझने में ही मिलेगा, परन्तु अभी तो व्यक्ति की अनिवार्य शारीरिक आवश्यकताएं ही मार्ग में मुंह खोले खड़ी हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कार्लमार्क्स का दर्शन इस रूप में तो स्तुत्य है ही कि उसने मानव-जीवन की प्रगति के पथ में शोषण को, श्रम-शक्ति की लूट को सबसे बड़ी बाधा कहा है। शरीर द्वारा ही आत्मा को समझा जा सकता है क्योंकि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' वाली बात गहन मनोमन्थन में से निकली है। होता यूं है कि शरीर को जैसे तैसे बनाए रखने की उलझनों में फंसा प्राणी, शरीर से अगली बात सोच ही नहीं पाता। जो परिवार या समाज, देश या राष्ट्र ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाता जिस में लोगों को इज्जत के साथ भोजन वस्त्र और आवास प्राप्त हो सके उस परिवार, समाज और देश में बालकों के कल्याण की कल्पना करना बंजर धरती में लहलहाती फसलों के स्वप्न देखने के समान ही है।

यह ठीक है कि जिन देशों में भोजन, वस्त्र और आवास जन-साधारण को प्राप्त हैं वहां भी जन-मानस विकृत है अथवा पूर्ण परिष्कृत नहीं है, परन्तु इतना तो मानना ही होगा कि जन-मानस को परिष्कृत करने के सुअवसर उनके पास आर्थिक संकटग्रस्त देशों की अपेक्षा अधिक हैं।

हो यह रहा है कि जिन के पास अध्यात्म ज्ञान की अमूल्य सम्पदा है वे भूख से पीड़ित हैं और जिन के पास आवश्यकता से अधिक सुख-साधन हैं वे अपने ही उन्माद में विक्षिप्त हैं। सारी मनुष्य जाति, मानव समाज का सन्तुलन बिगड़ गया है अतः भविष्य के भाग्य-विधाता बालक गिड़गिड़ाना और तिलमिलाना सीख रहे हैं और बाल-कल्याण चाहने वाली सारी मानव जाति के आगे बहुत बड़ा प्रश्न-चिह्न बन कर खड़े हैं। देखना यह है कि संगीत की मधुर लय में जो ये गिड़गिड़ाहट और कर्कशता के स्वर आ मिले हैं उनमें हमारा उत्तर-दायित्व कहां तक है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैंने पहले ही कहा है कि प्रगति की राह सीधी-सपाट नहीं है अतः भंवर में फंसी नैया को देख घबराने की आवश्यकता भी नहीं है। जैसी शंका आज मानव जाति के सम्मुख है ऐसी ही एक बार अर्जुन के मन में हुई थी। यदि हम आने वाले बालकों का, उस पीढ़ी का जो प्रगति में अगली कड़ी जोड़ेगी, कल्याण चाहते हैं तो भगवान् कृष्ण की शिक्षा को हर पग पर सहेज रखना होगा। अर्जुन के रथ पर बैठे हुए भगवान् ने कहा था—

"योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"

प्रगति को हम स्वार्थ के मापदण्डों से मापना छोड़ दें तो मलिन दृष्टि निखर सकती है। स्वस्थ दृष्टि के लिए आवश्यक है कि हम बालकों को मानव मूल्यों की थाती सौंप कर जाएं ताकि क्रोध और घृणा, वैमनस्य और ईर्ष्या, हिंसा और वासना के विषैले वातावरण में उनके हृदय के पवित्र और सुगन्धित फूल खिलने से पहले ही न मुरझा जाएं।

हो सकता है कि मानव-मूल्यों की थाती सौंपते समय हमारे स्वार्थों को ठेस पहुंचे, हमें अपने सुख और वैभव आने वाली सन्तानों के लिए बलिदान करने पड़ें परन्तु यह किसने कहा है कि साधना का मार्ग सरल होता है ? इस भारत मां की माटी अनादि काल से साधकों का साधना-पीठ रही है, इसी माटी पर योगिराज श्री कृष्ण ने बांसुरी बजाई है और धर्म क्षेत्र में पाञ्चजन्य भी फूंका है, गोरखनाथ ने भस्म रमाई है और अत्याचारियों के दांत भी खट्टे किए हैं, माताओं ने लोरियां भी सुनाई हैं और समय पड़ने पर सुरक्षा के लिए तलवारें भी उठाई हैं और मैं समझता हूं कि उन्हीं पूर्वजों का खून हमारी रगों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में बह रहा है, फिर यह खून कठिनाईयों और मार्ग की विघ्न-बाधाओं को देख कर ठण्डा कैसे हो सकता है ? दुनिया भंवर में फसी है, यदि हम ने भी हिम्मत हार दी तो क्या इस साधनापीठ को देखते देखते मानवता की श्री आंखें पथरा नहीं जाएंगी ?

यही सोच कर मैं निश्चय करता हूं 'योगस्थ: कुरु कर्माणि... समत्वं योग उच्यते।' यदि ययाति पुरु की आयु ले कर नहीं अघाया तो हम कौन से अपने पुत्र पुत्रियों का कल्याण छीन कर हमेशा इस धरती पर ठहरने वाले हैं ? हम जब नहीं होंगे तब भी जीवन होगा, उसकी गति होगी और गति केवल गति का साथ देती है, राह की अड़चनों को मिटाती, फलांगती सदा अपनी सुमधुर लय में आगे बढ़ती रहती है। अत: मैं निर्णय करता हूं कि सदैव गति का साथ दूंगा, गति के मार्ग की चट्टान नहीं बनूंगा।

अगर मैं अपनी साधना पर अटल रहा तो कौन जाने कब धरती पर घूमता लट्टू अपनी गति में दुनिया की कठिन पहेलियों को हल कर जाए, पैरों पर थाप कर बनाया घरौंदा कोई नया ताजमहल दुनिया को दे जाए, नन्हे से हाथ का छोटा सा हवाई जहाज कब चांद पर जा पहुंचे, पानी से खेलता हाथ कब रेगिस्तान में हरी फसलें लहलहा दे, नन्ही सी पोरी कब कृष्ण की बांसुरी बन जाए, नन्हा सा फूल कब बुद्ध के हृदय का कमल बन जाए, नन्ही सी किलकारी कब चैन्तय के 'हरि-हरि बोल' की लय में जा मिले, उछलते कूदते कदम कब गिरधर के संग नाचने लगें, तुतलाती बोली कब यमराज से अपना सुहाग लौटा लाए और भोला सा प्रश्न कब यमराज से मृत्यु जैसी समस्या का हल ला कर संसार के सामने नई राहें खोल दे ?

दुनिया स्वप्न सही, लेकिन ऐसे सुन्दर सपने को तोड़ना भी क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कठोरता नहीं होगी ? मैं बच्चे के हाथ के लट्टू को जो धरती पर पूरी गति से घूम रहा है इसी तरह घूमने दूंगा ताकि अनादि-अनन्त संगीत में और कड़ियां जुड़ती रहें, और मधुरिमा घुलती रहे, यह सपना सुन्दर से सुन्दरतर होता रहे, सृष्टि की प्रगति बनी रहे।

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चक्रव्यूहों में से बढ़ते लोक-चरण

ऐतिहासिक घटनाओं तथा सामाजिक परिस्थितियों ने 'सुरक्षा' शब्द को ऐसे विलक्षण रूपों में ढाला है कि इस शब्द के अर्थ ही उलझते जा रहे हैं। काल-प्रवाह ने उस युग को तो अतीत के गर्त में सुला दिया, जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सैनिक शक्ति द्वारा पराजित करने के पश्चात् विजय-गर्व के मद में झूमा करता था और अपने शौर्य का परिचय दिया करता था। क्योंकि मानव की अन्तरात्मा मूलत: आज भी पाशविक प्रवृत्तियों से आबद्ध है; अत: अब उसी सैन्य शक्ति का प्रयोग, प्रसार लोलुप राज्य सुरक्षा की ओट में करते हैं। राजनीति और कूटनीति के विश्वव्यापी मञ्च पर अभिव्यक्ति ऐसे आवरण लपेट कर आती है कि आक्रामक और आक्रान्त में भेद करते समय कुछ वैसी ही कठिनाई आ खड़ी होती है जैसी कि मर्यादा-पुरुषोत्तम राम को बालि और सुग्रीव के अन्तर करने में हुई थी। यही नहीं, एक ही राष्ट्र में विभिन्न वर्ग, सुरक्षा के अर्थ को अपने अपने चौखटों में फिट बैठा कर एक दूसरे को मात देने का प्रयत्न कर रहे हैं।

'राष्ट्र-रक्षा' पर कुछ कहने से पूर्व 'राष्ट्र' के अर्थ समझ लेना भी उचित है। मेरी समझ में किसी भी लोक समुदाय को जिस की एकता सांझे हितों के आधार पर हो और उन सांझे स्वार्थों की पूर्णता के लिए वह कटिबद्ध हो, राष्ट्र की संज्ञा दी जा सकती है। सामूहिक हितों की पूर्ति की भावना के आधार पर जाति, धर्म, भाषा, भौगोलिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और ऐतिहासिक परिस्थितियां अथवा अर्थ-व्यवस्था हो सकते हैं, परन्तु फिर भी एक ही सिद्धान्त के आधार पर सभी राष्ट्रों का निर्माण हुआ हो, ऐसी बात भी ठीक दिखाई नहीं देती। कुछ राष्ट्र परम्पराओं के आधार पर बने हैं परन्तु आज की विश्व-व्यवस्था में कुछ राष्ट्र ऐसे भी हैं; जो विरोधी परम्पराओं के होते हुए भी राष्ट्र की परिभाषा पर पूरे उतरते हैं।

क्योंकि लोक समुदायों के सांझे स्वार्थों की रूप-रेखा बदलती रहती है अतः राष्ट्र भी बनते बिगड़ते और उस बिगड़ने में से ही पुनः बनते रहते हैं। १९४७ तक भारत और पाकिस्तान एक ही राष्ट्र के अंग थे, परन्तु अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं और राष्ट्रीय राजनीति ने कुछ ऐसी करवटें लीं कि आज न केवल भारत और पाकिस्तान विश्व राजनीति के मंच पर दो विभिन्न राष्ट्र मान लिए गए हैं, बल्कि आज भी युद्ध का धुआं पूर्णरूप से क्षितिज से लुप्त नहीं हुआ है। पाकिस्तान ने पैटन टैंकों की पंक्तियां भारत के सीमा क्षेत्रों की ओर बढ़ाते समय, आक्रमण को सुरक्षात्मक कार्यवाहियों की संज्ञा ही दी थी। अतः जब हम राष्ट्र-रक्षा की बात करते हैं तो राजनीतिक और कूटनीतिक शब्द-जाल से निकल कर स्थिति का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

जब हम स्व-राष्ट्र की रक्षा की बात करते हैं तो उपरोक्त पृष्ठ-भूमि में उसके ये अर्थ निकलते हैं कि भारतवर्ष के लाखों गांवों में रहने वाले तथा शहरों, कस्बों और महानगरों में रहने वाले लगभग पचास करोड़ लोगों के सांझे हितों की रक्षा की जाए। इसी रक्षा के कलेवर में सभी जातियों, वर्णों, सम्प्रदायों और वर्गों की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आत्मनिर्भरता और स्वतन्त्रता की बात समा जाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वामी शंकराचार्य ने 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा, 'लोक्यते इति लोक:' 'लोकयति इति लोक:'। लोक वह है जो दूसरों को दिखाई देता है और जो खुद भी दूसरों को देखने की सामर्थ्य रखता है। इब्राहीम लिंकन ने कहा था, "मैं दूसरों का दास बन कर रहना उचित नहीं समझता; इसी से यह भी प्रमाणित है कि मैं दूसरों को दास बनाना पाप समझता हूं।" आज हो यह रहा है कि रक्षा के नाम पर ही लोक का एक अंग दूसरे अंग की उपेक्षा करके अपने वैभव-विलास का प्रासाद शोषण की बुनियादों पर उसार रहा है। ये भव्य प्रासाद, जिन की नींव असंतुलित धरातल पर है, सुदृढ़ दुर्ग बन सकेंगे या नहीं, यह एक गम्भीर समस्या है।

चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के समय यह बात देखने सुनने में आई कि निम्नवर्ग और मध्यवर्ग के लोगों ने अपनी निजी समस्याओं और कठिनाइयों को भूल कर जितनी उदारता से राष्ट्र के रक्षा-कोष को भरा उतनी उदारता पूंजीपति वर्ग ने नहीं दिखाई। यहां तक कि कुछ पूंजीपतियों ने युद्ध के दिनों में अपने बैंक बैलेंस विदेशों के बैंकों में भी भेजे। ऐसी स्वार्थी मनोवृत्ति से ग्रसित व्यक्ति या वर्ग यदि उंगली कटा कर शहीदों में नाम लिखवाना भी चाहें तो भी राष्ट्र के महायज्ञ में दारिद्रय के नेवले का आधा शरीर सुवर्णमय होने से रहा।

वे दिन बीत गए जब पर्वत, नदियां, समुद्र और मरुस्थल एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से अलग रखते थे। वैज्ञानिक प्रगति ने सारे संसार को सामीप्य की परिधि में ला खड़ा किया है। एक राष्ट्र विश्व-व्यापी आन्दोलनों अथवा हलचलों से कितना भी बचना चाहे, बच नहीं सकता। यही कारण है कि राष्ट्र चाहे व अनचाहे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर गुटों में बदलते जा रहे हैं। वही राष्ट्र जो लोक कल्याण के उच्चतर जीवन के लिए अत्यावश्यक इकाइयां समझे जाते थे, उनकी रूपरेखा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बदल रही है। कोरिया, कांगो, हंगरी और वियतनाम में बरसने वाले युद्ध के बादलों ने प्रमाणित कर दिया है कि एक राष्ट्र में होने वाली ध्वंसात्मक गतिविधियों से अन्य राष्ट्र अछूते नहीं रह सकते, अतः अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर शान्ति स्थापित हुए बिना किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा संकट की परिधि से बाहर नहीं है। राष्ट्र रक्षा के लिए ही यह आवश्यक और अनिवार्य है कि हम विश्वशान्ति के प्रयत्नों में जागरूक राष्ट्र के आधार पर अपनी भूमिका निभाते रहें।

विश्वशान्ति की समस्या के साथ ही वैज्ञानिक प्रगति और मानव-मूल्यों के ह्रास का प्रश्न जुड़ा हुआ है। राष्ट्रों ने एटम और हाइड्रोजन की अपार शक्तियों का अनुसन्धान कर लिया है, प्रक्षेपास्त्रों और अणु-अस्त्रों से अपने शस्त्रागारों को भर लिया है, परन्तु यदि इन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग कोई भी राष्ट्र किसी भी समय विक्षिप्तावस्था में कर बैठा तो सारी पृथ्वी को दहकती आग का गोला बनते विलम्ब नहीं होगा। ऐसे में लोगों को शायद पुनः गुहामानव से जीवन प्रारम्भ करना पड़ेगा। साम्राज्यवादी शक्तियों का नेतृत्व करने वाला अमेरिका और साम्य-वादी प्रतिनिधित्व करने वाला रूस दोनों ही एटम और हाइड्रोजन बमों को समुद्र में फेंकने की बात करते हैं परन्तु भय और शंकाओं के वातावरण में कुण्ठाग्रसित होने के कारण दोनों ही अणुशक्ति को बढ़ाने की होड़ में लगे हैं। इस वातावरण में भारत तटस्थ हो जाए; यही पर्याप्त नहीं है। राजनीतिक दृष्टिकोण से भारत के लिए आवश्यक है कि तटस्थ राष्ट्रों की शक्ति बनाने में वह नेतृत्व की भूमिका निभाए और विश्व-चेतना की आध्यात्मिक दृष्टि तथा मानव मूल्यों की अतुल सम्पदा प्रदान करने में सहयोग दे, ताकि साम्राज्यवादी और साम्यवादी शक्तियां तथा चीन जैसी तानाशाह शक्तियाँ संसार को धधकती ज्वालाओं का नरक-कुण्ड बनाने का दुस्साहस न करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तटस्थ होने के लिए आत्मनिर्भरता प्रथम अनिवार्य शर्त है। पंच-वर्षीय योजनाओं में असन्तुलन के कारण और शोषक वर्ग की हीन मनोवृत्तियों के फलस्वरूप आज हमारा राष्ट्र लगभग सभी क्षेत्रों में परमुखापेक्षी है। पंचवर्षीय योजनाएं लोकचेतना में से प्रकट हुई प्रतीत नहीं होतीं ऊपर से ठोंसी हुई लगती हैं। यदि ऐसा न होता तो इन योजनाओं को लोक-मानस तक पहुंचाने के लिए करोड़ों रुपए खर्च न करने पड़ते। अभी तक हम प्रजातन्त्र का स्वांग भरने से अधिक कुछ कर नहीं पाए हैं। प्रशासन आज भी नीचे से ऊपर की ओर नहीं उभरता अपितु ऊपर से नीचे की ओर बहता है। परिणामस्वरूप जन-मानस ठोंसे हुए कार्यक्रमों में बंधा बंधाया सा अपनी भूमिका निभाता है। हम कूटनीतियों की होड़ में बापू की बातों की रट लगाना सीख गए हैं, बापू की आत्मा को आत्मसात् नहीं कर पाए हैं।

कोई भी राजनीतिक दल बहुमत के बल पर लोगों पर मनचाहे ढंग से कुछ समय के लिए शासन का भय तो जमा सकता है परन्तु जन मानस से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए बिना राष्ट्र-रक्षा अथवा प्रगति की आशा नहीं कर सकता।

प्राकृतिक कारणों के साथ साथ असन्तुलित योजनाओं ने देश की प्रगति में जो बाधा उपस्थित की है, उसे भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि के अन्तर्गत भूमि-सुधारों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। भारत कृषि प्रधान देश है, अस्सी प्रतिशत जनता खेती बाड़ी पर निर्भर है, यह बात योजना शास्त्रियों के मस्तिष्क में गहरी नहीं पैठी। बैंक मालिकों ने सट्टा बाज़ारों में, शेयर मार्केट्स में जो रुपया शोषण के लिए लगाया था, उसका सही प्रयोग नहीं किया गया। भारत ने कुछ क्षेत्रों में प्रगति की तो सही, परन्तु उस प्रगति में सन्तुलन न रह सका।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यही नहीं, विश्व बैंक के दबाव में आकर हमारी सरकार को रुपए का अवमूल्यन करना पड़ा है। अवमूल्यन का पग उठाते समय न तो राजनीतिक दलों को और न ही जनता की सम्मति को कोई महत्व दिया गया। तीन चार लोगों ने सारे राष्ट्र की सम्मति की अवहेलना करते हुए अपनी सम्मति राष्ट्र पर लाद दी। आज हम उस दलदल में आ फंसे हैं, जहां हमारी आर्थिक परमुखापेक्षिता स्वतन्त्रता के लिए ही भय बन गई है। अमेरिका ऋण देते समय यह कहता है कि भारत को ऋण का रुपया अमेरिका की इच्छा से प्राइवेट सैक्टर में प्रयुक्त करना होगा।

खाद्यान्न तथा योजनाओं को चलाने के लिए विदेशों के आगे झोली फैलाने से राष्ट्र की सुरक्षा गहरे भंवर में फंसती जा रही है। यदि भारत गौरव और मर्यादा से जीना चाहता है, तो उसे इस पर-निर्भरता को शीघ्रातिशीघ्र त्यागना होगा। यदि जनमानस और शासन की बागडोर सम्भालने वाले दल में तारतम्य स्थापित हो जाए तो ऐसा हो पाना असम्भव नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रजातन्त्र को ओढ़ा न जाए बल्कि उसे जन-जीवन में आत्मसात् किया जाए। यजुर्वेद की सूक्ति है 'विशि राजा प्रतिष्ठितः'—राजा की स्थिति प्रजा पर ही निर्भर होती है। ऐत. ब्रा॰ में कहा है 'राष्ट्राणि वै विशः'—प्रजाएं ही राष्ट्र को बनाती हैं। जिस राष्ट्र में प्रजा असन्तुष्ट हो, प्रजा राष्ट्र निर्माण के कार्य में निरुत्साही होकर खिंची बंधी सी चले, उस राष्ट्र की सुरक्षा संकट में ही समझनी चाहिए। जब भी कभी इस देश पर संकट आया तो वह भीतरी फूट, असन्तोष, भय और शंकाओं के गर्भ से निकली कुण्ठाओं और बुद्धि भेद के कारण ही आएगा। चाहिए यही कि हम इस मोर्चे की ओर विशेष ध्यान दें।

अथर्ववेद का एक मन्त्र है 'त्वां विशो वृणता राज्याय' अर्थात्, हे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजन्, प्रजाओं द्वारा तुम राज्य के लिए चुने जाओ। पहले राजा चुने जाते थे अब, राजनीतिक दल चुने जाते हैं। यदि राजनीतिक दल प्रजाओं द्वारा न चुना जाकर, प्रजाओं की स्वीकृति का समर्थन प्राप्त कर ले, तो वह रेत की धरती पर सुन्दर भवन बनाने का सा प्रयास होगा। आज भी चुनाव में जन की इच्छा से कहीं अधिक अर्थ-बल काम करता है। पूंजीपति-वर्ग शोषण को स्थिर रखने के लिए विभिन्न उपायों से ऐसे प्रतिनिधियों को लोकसभा, राज्य सभा और परिषदों में भेजता है जो उसकी नीति पर सही की मोहर लगाएं। आज भी राजनीतिक दल चुनाव लड़ने के लिए पूंजीपतियों के आगे हाथ फैलाते हैं। भिखारी दल या व्यक्ति निष्पक्षता का स्वांग तो भर सकता है, परन्तु निष्पक्ष हो नहीं सकता।

लोग महंगाई के बोझ के नीचे पिसते रहते हैं। लाभ को बटोरने की धुन में धनपति जन-आक्रोश की बात भूले रहते हैं। उस आक्रोश का विश्लेषण करने के पश्चात् उपचार करने की अपेक्षा होता यूं है कि वेतन बढ़ाने और क्रयशक्ति घटाने का अद्भुत खेल चलता रहता है। यह जन-मानस का आक्रोश एकत्र होकर कोई सृजन भले ही न कर पाए, विध्वंस लीला की सामर्थ्य तो रखता ही है। राष्ट्र रक्षा के लिए आवश्यक है कि इस आक्रोश का उपचार किया जाए, इससे खिलवाड़ न किया जाए। यह तभी सम्भव है, जब राजनीतिक दल धनपतियों की अपेक्षा अपनी नीतियों के सत्य, अपने लक्ष्यों की सिद्धि तथा सही अर्थों में समाजवाद की स्थापना के लिए शोषित जनता तथा जन-मानस का विश्वास जीतने का प्रयत्न करें। मार्ग कठिन है, परन्तु राष्ट्र प्रेम का मार्ग सदैव बलिदान और त्याग की परम्पराओं से प्रशस्त हुआ करता है। यह सही है कि राष्ट्र की स्थिति विश्व-चेतना के सन्दर्भ में बदलती रहती है। मानव प्रगति के प्रवाह में राष्ट्र, चरम लक्ष्य नहीं हैं, अपितु लक्ष्य की ओर बहने वाली सरिता के सुरम्य घाट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। इन सुरम्य घाटों पर विश्राम करने के पश्चात् मानव की चेतना नई स्फूर्ति ग्रहण करती है, नई शक्ति संजोती है, नए विश्वास जुटाती है और पुन: 'भ्रातरो मनुजा: सर्वे स्वदेशो भुवनत्रयम्' के लक्ष्यों की ओर अग्रसर होती है।

परन्तु यह भी भुलाया नहीं जा सकता कि इन पड़ावों और घाटों की, मानव प्रगति में अनिवार्य आवश्यकता है। भारत ने कभी नहीं चाहा कि यह किसी पड़ोसी राज्य को हड़प ले, क्योंकि इस मिट्टी में महाराणा प्रताप और शिवाजी, गोविन्दसिंह और बन्दा वैरागी का प्रभाव है। इसका सन्तों और भक्तों ने दिशा निर्देश किया है और ये सन्त और भक्त वे हैं जिनकी वाणी गीता, रामायण और गुरुवाणी में से प्रस्फुटित हुई है, विकसित हुई है। हां, जब कभी इस भारत भूमि पर किसी ने कुदृष्टि से देखा है, तभी इस धरती के राजपूत योधे, सिक्ख सूरमा, बांके और छबीले जाट, रणबांकुरे नाटे गोरखे और लोहे की दीवार जैसे डोगरे मां दुर्गा और मां चण्डी की शपथें खा कर निकले हैं और उनकी तलवारें और किरपाणें, भाले और खोखरियां तभी म्यानों में गई हैं, जब शत्रु के अपवित्र संकल्प धूल में मिल गए हैं। वीरों से यह भारत-भूमि कभी खाली नहीं हुई परन्तु आज के भामाशाह अपनी परम्पराओं से पिछड़ते जा रहे हैं। आज युद्ध के साधन बदल गए हैं, शस्त्रास्त्रों के लिए अनन्त और अगाध धन राशि की आवश्यकता है, क्योंकि बहादुरों के हाथ में सुरक्षा के लिए स्वचालित यन्त्र तभी हो सकते हैं जब आज के भामाशाह अपनी तिजोरियों के मुहों पर लगे ताले बैंको के राष्ट्रीयकरण की ताली से खोल दें।

राष्ट्र-रक्षा की राह, इन्हीं खाद्यान्न के संकटों, वस्तुओं की महंगाई, निर्बल राजनीति, आपसी फूट, स्वार्थी शत्रुओं द्वारा रचित षड्यन्त्र, विदेशी मुद्रा के दबाव, साम्राज्यशाहियों तथा तानाशाहियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के प्रसार की अमानवीय इच्छा, अणु-बमों की भट्टियों औ आकाश से बरसती आग, प्राकृतिक प्रकोप और मानव मूल्यों के ह्रास, भ्रष्टाचार और चोरबाजारी, आक्रोश और असन्तोष के चक्रव्यूहों में से होती हुई ही लोक कल्याण तक निकल गई है। लोकचरण असीम शक्ति लिए, अनादि काल से चल रहे हैं और अनन्त काल तक चलते रहेंगे। अत: मेरी आशा बलवती है कि इन चक्रव्यूहों में से विजयी होकर लोकचरण अवश्य आगे बढ़ेंगे क्योंकि मानाव का स्वभाव विघ्न-बाधाओं को देख कर रुकना नहीं है। फ़िर गीता की वाणी 'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ' भी तो जन-मानस में निरन्तर गूंज रही है।

★

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौराहे और सलीब

मैंने एक बात बहुत पहले पढ़ी थी। श्रमण महावीर के प्रवचनों को सुनने देश-देशान्तर से लोग आते, जीव जन्तु भी उनके इधर-उधर विचरते रहते। महावीर एक ही भाषा का प्रयोग करते परन्तु सभी उपस्थित समुदाय को उनकी बातें समझ में आ जातीं। मैंने पढ़ कर मन ही मन लिखने वाले को पाखण्डी और धूर्त कहा और वह बात मेरे अन्तर्मन के किसी कोने में दब-दबा गई। एक दिन अचानक घुमक्कड़ी में एक जैन साधू मिल गए। उनसे चर्चा चल निकली तो वह शंका भीतर से बाहर आ गई। उत्तर में उन्होंने कहा, "हमारे मत में, ईश्वर, जीव में ही प्रच्छन्न शक्तियों का उच्चतम, श्रेष्ठतम और पूर्ण प्राकट्य है।" मैंने बहस को आगे बढ़ा कर उनके मन को दुखी करना उचित न समझा परन्तु शंका बनी रही।

फिर परिस्थितियों ने ऐसी करवट ली कि मैंने जीवन में पलायन को ही सखा समझा और भगवां पहन भारतवर्ष के तीर्थों में घूमता भटकता रहा और एक दिन वृन्दाबन पहुंच गया। वहां मिले बाबा ललितादास, नाद ब्रह्म के उपासक। जब संगीत उनकी आत्मा से मुखरित होता तो यूं लगता मानों समय दौड़ते दौड़ते थम गया हो। मैंने पूछा था, "आपने यह सब कहां से प्राप्त किया है ?"

बोले, "प्राप्त करना कुछ नहीं होता, अपने को ही जानना होता है। अपने को ! यानि एक में अनेक को, अनेक में एक को, तभी नाद सिद्ध होता है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं तब तक भारत की आत्मा को कुछ कुछ समझने लगा था। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहने लगे, "अनादि और अनन्त की उपासना का माध्यम भी अनादि और अनन्त ही हो सकता है। क्योंकि हमारे बिहारी जी अनादि और अनन्त हैं अतः नाद, जिसका न आदि है और न अन्त, वही उपासना का माध्यम बन सकता है।"

मैंने अपनी आंखों से उनकी साधना-स्थली पर डोलते विषधर सर्पों और बिच्छुओं को देखा है। पूछने पर उन्होंने यही कहा है, "ये बेचारे भी नाद का आनन्द लेने इधर डोला करते हैं।"

उस नाद ने जब मेरी आत्मा को स्पर्शित किया तो जाने कितने सन्देह, कितनी शंकाएं पलक झपकते ही धुल पुंछ गईं और तब भीतर बैठे किसी ने प्रश्न किया, "कहो श्रमण महावीर की बात कहने वाला धूर्त था या पाखण्डी, कपटी था या प्रपञ्ची?"

उस मैं ने जो धुल पुंछ गया था, स्वीकार किया, "मेरा अहं धूर्त था, अज्ञान पाखण्डी था, मन की संकीर्णता कपटी थी और मिथ्या मोह प्रपञ्ची था।"

साहित्यिक क्षेत्र में भी यही कुछ हो रहा है। आज सभी एक दूसरे को धूर्त, पाखण्डी, कपटी और प्रपञ्ची कह कह कर अपनी महानता का स्वांग भर रहे हैं और एक का रोग, अनेक का रोग बनता जा रहा है क्योंकि एक, अनेक का ही अंश है। कई बार तो मुझे यूँ लगने लगता है कि आज के युग द्रष्टा कलाकार और कलाकारों को सर्कस का शेर समझ कर हण्टर से सधाने के प्रयत्न में जुटे आलोचक, सभी की आंखों में आंधियों और बवण्डरों की धूल भर गई है और सभी आंखें मलते हुए, टटोल टटोल कर आगे बढ़ रहे हैं। कभी कभार टकरा जाते हैं तो आत्मकेन्द्रित होने के नाते एक दूसरे को गाली निकाल कर मन की सैडिस्ट मण्टेलिटी को खुश कर लेते हैं। जन-साधारण का समुद्र की लहरों की तरह उमड़ता उछलता विशाल समूह,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम टटोल टटोल कर आगे बढ़ते हुओं को ही मार्गदर्शक समझता हुआ हमारे पीछे पीछे चला आ रहा है और जब ठोकर खाकर किसी गढ़े में गिरता है, चीखता चिल्लाता है, छीना झपटी, मार पीट करता है तो हम अपनी सफाई में कहते हैं, 'यथातथ्यवादी चित्रण' तक ही हमारा उत्तरदायित्व था, वह हमने निभा दिया, तुम हमें इससे अधिक मानो तो इसमें दोष तुम्हारा है।

एक दूसरे पर दोषारोपण करने से या पानी पी पी कर एक दूसरे को कोसने से बीमारी दूर नहीं होती बल्कि लगातार बढ़ती रहती है। आखिर एक दिन ऐसा आता है जब हर साहित्यकार और कलाकार के मन में प्रश्न उठता है, "जो जैसा दिखाई देता है, उसे वैसे का वैसा चित्रित कर देने तक ही क्या मेरे उत्तरदायित्वों की सीमा रेखा है ? वीभत्स और कुरूप, कुत्सित और जघन्य के नरक कुण्ड से वग़ैर घबराए, उसमें उतर कर, उसमें सन लिथड़ कर, वीभत्सता और कुरूपता के वदबूदार कीचड़ में फंसे मानव को बाहर निकाल लाना क्या बेहतर नहीं है ? वीभत्सता और कुरूपता का चित्रण क्या अपने आप में चरमलक्ष्य है ? और अगर यही चरम लक्ष्य है तो क्या टैगोर और शरत्, निराला और प्रेमचन्द, टॉलस्टाय और गोर्की, चेखव और दास्तोवस्की सब के सब पागल थे ?"

इस प्रश्न से कतराने के दो ही परिणाम होते हैं। या तो साहित्यकार जिस कमरे में बन्द होकर ताला लगा लेता है, उसकी ताली गुम हो जाती है और वह घुट घुट कर उसी में मर जाता है या फिर असह्य आन्तरिक मानसिक यन्त्रणा के कारण जब कमरे से बाहर निकलता है तब तक पागल हो चुका होता है। अपने पागलपन में वह अपने सभी कपड़े उतार फेंकता है और वीभत्सता तथा कुरूपता का कीचड़ मल कर दूसरों के कपड़े उतारने को लपकता है। लोग उसे धक्का दे कर परे गिरा देते हैं, उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन भले लोगों को पागल समझ कर हंसता रहता है और भयावनी हंसी हंसते हंसते मर जाता है।

जीवन के यथार्थ से आंखें मूंदना, पलायन करना, उस मृत्यु का संकेत है जो दबे पांव खूनी पंजे लिए व्यक्ति और समाज की ओर बढ़ती रहती है। इसलिए समय रहते आदमी आंखें खोल कर मौत से जूझता हुआ आगे बढ़ता रहे यही श्रेयस्कर है और मौत से सहर्ष जूझ कर जीवन की ओर निरन्तर बढ़ने की प्रेरणा देना, यही कलाकार का उत्तरदायित्व है। यदि कोई साहित्यकार या कलाकार चाहे कि रोम जलता रहे और वह नीरो की तरह बांसुरी बजाता रहे और या फिर किसी अलित्युरस को अपने कमरे में बुला कर पूछना चाहे कि जलते हुए शहर को देख कर उसे अपने सम्वाद दोनों हाथ स्वर्ग की ओर उठा कर बोलने चाहिएं या अभिनय को जीवन्त बनाने के लिए उसका एक हाथ बांसुरी की ओर बढ़ना चाहिए, तो आज के युग में उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि उसीकी बांसुरी को मशाल बना कर लोग जलती हुई लकड़ी उसके कपड़ों से छुआ देते हैं और जब वह चीखता चिल्लाता है तो लोग उस गीत का आनन्द लिया करते हैं और उसकी अजीबोग़रीब ऐक्टिंग का लुत्फ फरमाते हैं।

ज़रूरी है कि जब कलाकार कमरे के भीतर हो तो उसकी खिड़कियां और रोशनदान खुले रखे और जब बाहर आए तो मात्र अपनी घुटन से घबरा कर बाहर न आए बल्कि लोगों का आर्तनाद सुन कर अपनी घुटन की बात भूल फौरन बाहर निकल पड़े तभी शायद उस एक की आवाज़ अनेक की बन जाए और अनेक उस एक में अपने को देखने लगें।

जो कुछ मैं कह रहा हूं उस पर कुछ बन्धुगण, शायद 'आदर्शवाद' की मुहर लगा कर 'डैड-लैटर' आफिस में भेज देने की राह सुझाएं। मुझे इसका रत्ती भर भी भय नहीं है क्योंकि मैं जानता हूं कि जब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक दिन लोग असली कातिलों का सुराग़ ढूंढने निकलेंगे तो उनमें से कोई एक उस 'डैड-लैटर आफिस' से मेरे खत को ढूंढ निकालेगा और उसके आधार पर मुकदमे में एक नया मोड़ आएगा, गुनहगार कटघरों में धकेल दिए जाएंगे और बेगुनाह कटघरों से बाहर निकाल लिए जाएंगे।

कमरे की खिड़कियां और रोशनदान तब बन्द होने लगते हैं जब कोई कलाकार अपनी पीड़ा के राग अलापने की धुन में लोगों के दुःखों और व्यथाओं को सुनना बन्द कर देता है और उसके राग सिर्फ उसके अपने बनके रह जाते हैं और लोगों को उन गीतों में अपने दुःख अपनी व्यथाओं की झलक तक दिखाई नहीं देती।

ताले की कुन्जी तब गुम हो जाती है जब कलाकार आत्मकेन्द्रित हो कर लोगों के करुण क्रन्दन को कला साधना की बाधा समझ सींखचों वाली खिड़की खोल कर गुस्से में आकर मेज़ पर पड़ी चाबी रोते चीखते लोगों के ऊपर फेंकता है और झट से खिड़की बन्द कर लेता है। कलाकार पागल होकर नंगा होकर वीभत्सता और कुरूपता को तब पहनता ओढ़ता है जब जलते नगरों को देख उसे अपनी प्रेमिका की सुनहरी केश राशि का ध्यान आता रहता है और नगरों का जलना उसे साधारण सी घटना लगने लगती है।

कवि और लेखक, गायक और वादक, चित्रकार और शिल्पकार जब प्रश्न से कतराता नहीं है, यथार्थ से आंखें मिलाता है तब "वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये......" कालिदास की बात की महत्ता को वह समझने लगता है। तब शब्द और अर्थ का भली भांति ज्ञान प्राप्त करने के लिए शब्द और अर्थं के समान नित्य मिले हुए, उमा और महेश्वर के आगे वह नत मस्तक होता है। उस ईश्वर को प्राप्त करता है जो जीव में ही प्रच्छन्न शक्तियों का उच्चतम और श्रेष्ठतम प्रगटीकरण है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मानव के उच्चतम और श्रेष्ठतम के प्रगटीकरण के लिए मानव को समझना आवश्यक है। व्यतीत और इतिहास के आधार पर भविष्य के लक्ष्यों तक झांकने के लिए किसी भी साहित्यकार को उसी समाज को माध्यम बनाना होता है जिस में वह जीता है, सोचता विचारता है, समझता बोलता है। आज के समाज से, उस समाज में रहने वाले व्यक्ति से कट कर न तो साहित्यकार इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में पढ़ सकता है और न ही भविष्य के उच्चतम और श्रेष्ठतम लक्ष्यों तक नज़र दौड़ा सकता है, बस त्रिशंकु की तरह अधर में टंगा प्रगतिशीलता की दुहाई दिया करता है और फिर इस दुहाई को अरण्यरोदन बनते देर नहीं लगती। यदि कलाकार मानव जाति के इतिहास से कट कर मात्र क्षणों में जीने लगे तो ओबेरॉय इन्टरनैशनल में टर्किश बाथ के वक्त गुनगुनाई जा सकने वाली किसी अश्लील कविता पंक्ति की रचना कर देता है जो आत्मा को मार देती है और इन्सान के अन्दर के निम्नतम और निकृष्टतम को गंदगी में लोटने के लिए खुला छोड़ देती है और यदि कलाकार इतिहास से जुड़ा रहे, भविष्य को उज्ज्वल बनाने में प्रयत्नशील रहे तो कोई बैजूबावरा जन्म लेता है जो किसी मानसिंह की सभा का रत्न बन कर पुरानी गायकी का परिष्कार करता है और उस परिष्कार की नींव पर 'मङ्गल गूजरी' और 'गूजरी टोड़ी' राग रागनियों की नई देन समाज को दे जाता है ताकि उच्चतम और श्रेष्ठतम तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां बनती चली जाएं।

यदि इस जीवन के अतिरिक्त जिसे हम जीते हैं कोई अन्य माध्यम श्रेष्ठतम और उच्चतम तक पहुंचने का नहीं है तो फिर यह सोचे बग़ैर हम रह नहीं सकते कि यह जीवन कैसा है ?

आज हम एक ही साथ विभिन्न युगों में जी रहे हैं, विभिन्न स्तरों पर बोल-चाल रहे हैं और एक ही समाज में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहते हुए भी विभिन्न शीशे के मकानों से एक दूसरे को देखते हुए लेकिन एक दूसरे की वग़ैर सुने समझे घिसटते रपटते चले जा रहे हैं। कुण्ठाएं व्यक्ति के भीतर हैं, समाज में हैं और दर्शन तथा राजनीति में हैं। नाना प्रकार की बौद्धिक और मानसिक उलझनें जो पहले मकड़ी जाल की तरह लगती हैं मजबूत होती रहती हैं और फिर भयंकर बेड़ियों में बदल जाती हैं। रूढ़िवादिता पीछे को खेंचती है और पाश्चात्य की नकल करने की लत बेतहाशा आगे की तरफ और इसी सब के बीच व्यक्ति टूटता रहता है, समाज टूटता रहता है। साहित्यकार इन्हीं टूटते इन्सानों के बीच, टूटते समाज के बीच में रहता है। इसी वातावरण में घुटता है, चिन्तन करता है, सृजन करता है अतः उसकी सीमाएं हैं। परन्तु इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने से यह अटल और अडिग सत्य भी सामने आता है कि साहित्यकार और कलाकार में अपनी परिस्थितियों की घुटन से जूझते हुए निरन्तर अग्रसर होने की सामर्थ्य अन्य लोगों से अधिक होती है। वह खुद टूट कर नए की रचना करता चलता है ताकि उसके टूटने में से नई आशा की किरणें प्रगट होती रहें। 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की ओर जाने वाला कारवां कभी न थके, उच्चतम और श्रेष्ठतम की ओर बढ़ता रहे। हां, शर्त यह है कि कलाकार लोभ और मोह में फंस कर, भय और विरोध से घबरा कर, भूख और दुःख से तड़प कर अपनी आत्मा का हनन न करे। अगर कलाकार अपनी आत्मा को मरने नहीं देगा तभी कोई गीत दिलों को छू लेगा, कोई कहानी सबकी अपनी कहानी बन जाएगी। जब साहित्यकार और कलाकार, कवि और गायक, लोभ और मोह के पास अपने को गिरवी रख देता है, भय और विरोध के आगे दूसरे की आवाज़ को अपनी कह कर गिड़गिड़ाता है, भूख और दुःख के कारण दूसरों के हाथ की कठपुतली बन कर नाचता है तब समाज में भूख, दुःख, भय और लोभ पैदा करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियां उच

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुर्दा रचनाओं को सजा संवार कर जन मानस को ठगने निकलती हैं और जब समाज के सामने रंगबिरंगे भड़कीले लिबास के नीचे पड़े मुर्दों की हक़ीकत खुलती है तो जन साधारण चौंक कर पीछे हट जाता है और कन्धों पर उठा कर उन रचनाओं को चिता पर रख आता है।

ऐसी मुर्दा रचनाएं रचने वाले मुर्दा साहित्यकारों के पास केवल शब्द रह जाते हैं, ऐसे शब्द जिन का अर्थ से दूर का सम्बन्ध भी नहीं रहता जो केवल आत्मा के मूल्य पर पेट की भूख शान्त करना भर जानते हैं। ऐसे शब्द केवल समाज के शरीर में ज़हर भरते हैं क्योंकि विषपायी महादेव ऐसे शब्दों पर से जिनमें अर्थ न रह गया हो, अपना वरद हस्त खींच लेते हैं।

बात को जटिल बना कर कहने में, ऐसी भाषा में कहने में जिसे जनसाधारण न समझ सकें, लोगों पर 'जीनियस' होने का रोब तो गांठा जा सकता है लेकिन सृजन का लक्ष्य पूर्ण नहीं होता। 'क्षुरस्य-धारा' वाली समस्या आज के कलाकार के सम्मुख है।

ऐसी बात कही जाए जो असत्य से सत्य की ओर, असुन्दर से सुन्दर की ओर अशिव से शिव की ओर ले जाने वाली हो और ऐसे ढंग से कही जाए जिसे जनसाधारण अपनी बात समझ कर अपना ले, यह कार्य सरल नहीं है परन्तु इसी तलवार की धार पर चलने के अतिरिक्त और कोई मार्ग भी नहीं है। अगर आप उलझी शैली में बहुत ऊंचे आदर्शों की बातें करेंगे जो लोगों को अपनी पहुंच से दूर लगें तब वे निरुत्साही होंगे, आपकी बातों को अबोध, अगम्य और कोरा आदर्शवाद कह कर आपकी रचनाओं से अलग हो जाएंगे। और यदि आप लोगों को खुश करने के लिए अपने भीतर के सत्य का त्याग करेंगे तब भी निष्प्राण रचनाओं के अतिरिक्त और कुछ दे नहीं पाएंगे। दोनों से बच कर आगे बढ़ना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैंने, 'राहें और जाल' की कहानियों में एक प्रेमी और दो प्रेमिकाएं या दो प्रेमी एक प्रेमिका के शाश्वत त्रिकोण के पैटर्न पर ही अपनी अगली बात इसलिए कहने का दुस्साहस किया है क्योंकि यह त्रिकोण जन-मानस का चिर परिचित है। इसे देखकर, वे अपना घर समझते हुए कहानी के भीतर तक चले आते हैं और कथन के सत्य तक पहुंच जाते हैं। तथा कथित मॉडर्न पैटर्न मैंने इसलिए कहानियों में अपनाना कम किया है क्योंकि जन साधारण जिसने व्यस्त जीवन में से कुछ मिनट निकाल कर कहानी पढ़नी होती है और लम्बे उपन्यास पढ़ने की गुन्जाइश जिस के जीवन में नहीं है, वह मॉडर्न पैटर्न के चक्रव्यूहों को देख कर बाहर से ही भयभीत होकर लौट जाता है और फुटपाथों पर बिकने वाले गटर लिटरेचर की ओर लपक लेता है और इस तरह समाज के जीवन में अन्दर ही अन्दर ज़हर फैलता रहता है।

ब्लैक-बोर्ड वही है जिसे साहित्य प्रेमी बन्धु सदा से देखते आए हैं परन्तु उस बोर्ड पर मैंने अगली बातें लिखी हैं, सत्य में अगली कड़ियां जोड़ने का प्रयास किया है। जिस जन मन को ब्लैक बोर्ड पर लिखा पढ़ने की आदत है उसके आगे मैंने रेखागणित की आड़ी तिरछी रेखाएं खींच कर 'जीनियस' का खिताब लेने की कोशिश नहीं की। जन मानस में विश्वास पैदा करके कि यह राह उसकी जानी पहचानी है मैं जन-मानस को मॉडर्न पैटर्न तक ला खड़ा करना चाहता हूं। यह राह मुझे इसलिए अपनानी पड़ी है क्योंकि अपनी संस्था में काम करने वाले कर्मचारियों की तथाकथित अलमारियों में साहित्य के नाम को सार्थक करती हुई निहायत घटिया और अश्लील किस्म की पुस्तकों के दर्शन ही मुझे हुए हैं और मेरे मन में बार बार एक प्रश्न उठा है, "और आखिर तुम अपना साहित्य किनके लिए रच रहे हो ?" मेरा यह प्रयत्न कोई क्रांति भले ही न कर पाए परन्तु मुझे, कीचड़ में फंसे अपने साथियों को बांह पकड़ निकालने का सन्तोष अवश्य देता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाठकों के पत्र आते हैं तो सोचता हूं 'आज तो झूले री दोऊ' की 'राधा', 'धुनें और बुत' की 'ज़ीनत', 'पहाड़ियों के मोड़' की 'सन्ध्या', 'उलझती पगडण्डियों' की 'सुचित्रा' लोगों की अपनी बन गई हैं, यही क्या कम है ? इन्हें उलझे त्रिकोणों की अपेक्षा यदि रेखा-गणित के फार्मूले के मुताबिक जटिल बना कर पेश करता तो शायद वाहवाही तो खूब होती लेकिन जिनके बीच में से ये राधा, ज़ीनत, सन्ध्या और सुचित्रा आई हैं और झाड़ पोंछ कर जिन्हें मैंने वापिस लौटा दिया है उनके लिए ये पराई बन जातीं । वह दुःख मुझसे देखा न जाता अतः मैंने मूर्ख रहना ही स्वीकार कर लिया है । यह मूर्खता अगर पिछड़े हुओं और बेतहाशा आगे भागने वालों के बीच की कड़ी बन जाए तो मुझे दुःख नहीं होगा ।

हो यह रहा है कि साहित्यकारों के लिखे को साहित्यकार ही पढ़ते हैं और लिख पढ़ कर आपस में ही कह सुन कर खुश हो लेते हैं । चाहिए यह कि जो साहित्यकार लिखता है उसमें वे लोग भी अपना हिस्सा समझें जिनके बीच से पात्र लेकर वह लिखता है और जिनके लिए उन पात्रों के माध्यम से सत्य के विकसित रूप को प्रस्तुत करता है । अगर केवल स्वान्तः सुखाय लिखा गया है जैसा कि एक खालिस अतुकान्त कवि मित्र एक दिन मुझ से कह रहे थे तो मैं समझता हूं, लिख कर ही समय नष्ट क्यों किया जाए, बग़ैर लिखे ही मन ही मन उसका रसास्वादन क्यों न किया जाए ?

स्थिति बड़ी स्पष्ट है । हम मानें या प्रेस्टीज प्वाइंट बना कर न मानें वह बात दूसरी है । कवि या लेखक जो लिखता है वह उसके मन की अनुभूति होती है जो सहानुभूति से होती हुई अभिव्यक्ति तक पहुंचती है । सहानुभूति के लिए अन्य की आवश्यकता होती है और अभिव्यक्ति इसीलिए होती है कि मेरी अनुभूति में दूसरे सम्मिलित हों । हां, जब सम्मिलित होने वालों का अपनी अनुभूति से मेल नहीं बैठ पाता तब 'स्वान्तः सुखाय' का प्रश्रय लेना पड़ता है । यह सही है कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कवि या कहानीकार अपने लिए लिखता है परन्तु अपने ही लिए लिखता है यह बात समझ से बाहर की है।

आलोचकों के तीव्र प्रहारों से सहम कर जो लेखक अपने मन की बात को नहीं कहता या तोड़ मरोड़ कर उस प्रहार से बचने के लिए कहता है, मेरी समझ में न तो वह अपने तईं सच्चा रहता है और न समाज के प्रति ही अपना उत्तरदायित्व निभा पाता है। यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रत्येक आलोचक के न्याय और नैतिकता के बारे में अपने दृष्टिकोण होते हैं, अपने मापदण्ड होते हैं। रसों के विश्लेषण की बात तो बहुत पीछे रह गई अब तो वादों और विवादों का दौर-दौरा है। यदि आलोचक मार्क्सवादी हुआ और लेखक अपनी रचना में उस वाद विशेष की छाप न बैठा पाया तो फिर उस रचना की धज्जियां उड़ते देर नहीं लगती। इसी प्रकार यदि लेखक मार्क्सवाद से प्रभावित हुआ और आलोचक महोदय शुद्ध अध्यात्मवादी दृष्टिकोण के समर्थक हुए तब भी चमड़ी उधड़ते विलम्ब नहीं होता।

लेखक जनमानस के प्रति जागरूक रह कर, निर्भयता पूर्वक अपनी बात कहना सीख ले, यही ठीक है। कोई लेखक न होकर भी यदि लेखक होने का दम्भ करेगा तो चाहे आलोचक उसे लाख बचाना चाहें तब भी जनमानस उसे अपना नहीं पाएगा। जनबुद्धि भले ही कुण्ठित हो गई हो परन्तु जनमानस की पवित्रता में मुझे पूर्ण विश्वास है। इसी लिए कई बार मुझ जैसा साधारण लेखक आलोचकों की प्रखर बुद्धि को छोड़ जनमानस की पवित्र गंगा में डुबकी लगाना अधिक लाभदायक समझता है। और फिर यह भी कौन जाने कि किसी एक युग के धिक्कारे, ठुकराए और झुठलाए कीट्स, वान गॉग और ब्राउनिंग किसी दूसरे युग के जाने पहचाने बन जाएं!

सूर्य भगवान ने युधिष्ठर की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें अक्षय-पात्र दिया था। उधर दुर्योधन ने अपना कुचक्र चलाया और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्वासा ऋषि को शिष्यों समेत उस समय पाण्डवों के पास भोजनार्थ भेजा जब द्रौपदी खाना खा चुकी थी और अक्षय-पात्र उस दिन के लिए खाली हो चुका था। इतने में भगवान कृष्ण ने रसोई घर में आ कर खाने के लिए मांगा। द्रौपदी अक्षय-पात्र लाई तो कृष्ण ने एक छोर पर लगे अन्न के कण और साग की पत्ती को मुंह में डालते हुए कहा, "जो सारे विश्व में व्याप्त है, सारा विश्व ही जिसका रूप है, यह उस हरि का भोजन हो, इससे उसकी भूख मिट जाए और वह प्रसन्न हो जाए।" इतने मात्र से दुर्वासा ऋषि और उनके शिष्यों की क्षुधा निवृत्त हो गई थी। बेचारे पाण्डव और द्रौपदी शाप से बच गए।

जनमानस में ही हरि का निवास है। यह सारे विश्व में व्याप्त है, विश्व इसीका रूप है अतः जब साहित्यकार जनमानस की करुणा तथा स्नेह का पात्र बनता है तब वह खुद भी सारे विश्व में व्याप्त हो कर विश्व का रूप बन कर आलोचकों की शापाग्नि से बच जाता है।

मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव की 'ग्लास टैंक' और 'टूटना' के बारे में बहुत साल पहले मैंने एक उच्चकोटि की पत्रिका में समीक्षा पढ़ी कि कहानियां अस्वस्थ, घटिया किस्म की और निहायत बोर हैं। मैंने समीक्षा पढ़ने के बाद कहानियों को पढ़ा तो मुझे दोनों कहानियां भीतर तक छू गईं। समीक्षक अपनी जगह ठीक हो सकते हैं परन्तु पाठक को अगर कृति सुन्दर लगे, प्रेरणादायिनी लगे तो उनकी मनोनुभूति पर विश्वास कर लेना भी ठीक ही रहेगा।

लेखक पर जब मार पड़ती है तो तिलमिला कर वह भी कभी कभी बहुत गुसैली बात कह देता है। यदि लेखक यह दृष्टिकोण अपना ले कि उसने सभी आलोचकों की सुननी है और जो मन को जंचे वही राय माननी है तो काउण्टर रिप्लाई दिए बग़ैर उसी समय को सृजन कार्य में लगा सकता है। गाली और आक्रोश का उत्तर गाली या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आक्रोश में देने से विष फैलता है परन्तु गाली और आक्रोश का उत्तर न दे जब लेखक सृजन कार्य में रत हो जाता है तब उसमें महादेव की तरह विष पान करके मुस्कराने की क्षमता आती है और तभी वह विष के बदले अमृत लौटा पाता है।

हो सकता है कि फ्लाबेयर, ज़ोला, कामू और जेम्सज्वायस जैसी कहानियां हिन्दी के लेखक पाठकों को न दे पाएं, लेकिन हार कर बैठ जाना भी प्रगति के मार्ग में बाधक होगा। जब हम, अपनी परिस्थितियों और अपने वातावरण की बात भूल अन्य लेखकों की नकल करते हैं तब लड़खड़ा कर गिरते हैं लेकिन जब दूसरे देशों के लेखकों की कृतियों से प्रेरणा लेकर अपने वातावरण और परिवेश को समझ बूझ कर लिखते हैं तो साहित्य की गति एक कदम और आगे बढ़ती है।

राकेश की 'मिस पाल' अपनी जगह ठीक है और रेणु की 'तीसरी कसम' अपनी जगह ठीक है। अगर कोई जोश में आकर 'तीसरी कसम' की 'हीरा बाई' को 'मिस पाल' बना दे और 'मिस पाल' को 'हीरा बाई' की जगह जड़ दे तो कैसा अनर्थ हो जाएगा ?

इधर 'सारिका' वालों ने वादों और आन्दोलनों से अलग हट कर, खोई हुई कहानी का एक समवेत प्रयास शुरु किया है और लम्बी कहानियों की टूटी शृंखला फिर से जोड़ते हुए मन्नू भण्डारी की 'शायद' जैसी कहानियां पाठकों को दी हैं तो मुझे इसमें भी आलोचकों से अधिक जनमानस से प्राप्त प्रेरणा के दर्शन होते हैं। अच्छा है, पुराने को नए संदर्भों में पाने का हम प्रयत्न कर रहे हैं।

साहित्य और कला की हर सशक्त कृति अपने युग के जन जीवन से प्रेरणा लेती है और जनमानस को प्रक्षालित भी करती है। दोनों ही प्रक्रियाएं साथ साथ चलती हैं। जब इनमें सामञ्जस्य और ताल मेल नहीं बैठ पाता तभी साहित्य और कला पिछड़ने लगते हैं और उच्चतम तथा श्रेष्ठतम की ओर बढ़ते हुए जन जीवन के कदम लड़खड़ाने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगते हैं। आलोचक का पुनीत कर्तव्य यही है कि इस सामञ्जस्य और तालमेल को बनाए रखे। जब इससे हट कर वादों और विवादों में उलझ कर आलोचक स्वतन्त्र मूल्यांकन का अर्थ मनमाना मूल्यांकन करने लगता है तभी साहित्य का दुर्भाग्य प्रारम्भ होता है।

दिसम्बर १९६५ को कलकत्ता में आयोजित कथा-समारोह में 'उपलब्धियां, उभरती दिशाएं और आधुनिकता के संदर्भ...' वाली गोष्ठी में आदरणीय डॉ० वृन्दावन लाल वर्मा ने एक बात कही थी। वही बात उन्हीं के शब्दों में दोहराना चाहता हूं "आलोचक यदि निश्चित करले कि लेखक को गधा कहना है और उसकी मरम्मत करना है तो लेखक गधा न हो तो भी वह मरम्मत किए बिना नहीं रहेगा।" उन्होंने कहा था "महत्त्वपूर्ण है संस्कृति की बात, कि रचना सत्यं, शिवं, सुदरम् हो। इतिहास को वर्षों में नहीं बांटा जा सकता, वह तो धारा है और विकास की धारा पर ध्यान दिया जाना चाहिए।"

कई बार सोचता हूं कि यदि कोई कहानीकार चार पांच आलोचकों के सुझाव के अनुसार सभी सुझावों को मान कर अपनी कहानी को फिर से लिखने बैठ जाए तो कहानी बेचारी फिर कभी उस कहानीकार के पास जाने की हिम्मत न करे। यदि पांच आलोचक पांच तरह से लिखने का सुझाव देते हैं तो क्यों न उसी को मान्यता दी जाए जो लेखक की अपनी अनुभूति है।

बहुत सन्तोष होता है कि मैं इन गोष्ठियों और लेखकों की गुटबाज़ी से बचा रहता हूं। अगर किसी बड़े शहर में होता तो पक्का गुटबाज बन कर लेखकी को एक ओर रख कर हर रोज़ अखाड़े में उतरने के चक्कर में रहता। यही कारण है कि मित्रों के लाख कहने पर भी इस कोने से उठने को जी नहीं चाहता।

मित्र सलाह देते हैं, "किसी बड़े शहर में चल कर बैठिये न? इस कोने में पड़े क्यों ज़िन्दगी तबाह कर रहे हैं? 'बड़े शहर में होंगे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो दस साहित्यकारों से परिचय होगा। नाम बढ़ेगा, यश मिलेगा।" मैं सोचता हूं, "जो कुछ थोड़ा बहुत मैंने जीवन में भटक-भटक कर संजोया है और जिसे अपनी अनुभूतियों के आधार पर अभिव्यक्त करना चाहता हूं वह कहीं यश और धन के ढेर के नीचे पिस दब न जाए ? जो कहता हूं, उसे जुटाने में मेरा अपना साहस, अपनी हिम्मत, अपनी योजना, अपनी लगन कहां है ? परिस्थितियां जब मुझे जगह-जगह घुमा रही थीं, आंधी में टूटे पत्ते की तरह उड़ रहा था तब अनजाने ही इतिहास देवता ने जो कुछ मेरी झोली में भर दिया था, वह क्या इसीलिए कि उससे परिचय क्षेत्र बढ़ाऊंगा, धन और यश अर्जित करूंगा ? जो अनजाने ही मेरी झोली में आ गिरा है वह क्या मेरा अपना है ? उसे तो सभी में बांट लेने से ही ऋण मुक्त हुआ जा सकता है। यही सोच कर इस छोटे से शहर के कोने में पड़ा रहता हूं कि जब झोली उलटने की बेला आई है तो समेटने क्यों बैठूं ? अगर समेटने में उलझ गया तो ऋण बढ़ेगा, मन का बोझ बढ़ेगा, दूर बैठी कोई दो आंखें अन्तरिक्ष में से झांकती हुई कहेंगी—"क्या इसीलिए मैंने तुम्हारी झोली भर दी थी कि कृपण बने रहो ?" यह सोचते ही मित्रों की बात मान नहीं पाता। कोने में पड़ा, अनजाना, अनचीन्हा लिखता रहूं, इससे अधिक मैंने चाहा ही कब है ?

एक साहित्यक बन्धु आए। कहने लगे, 'किसी से लिखवा कर या खुद लिख कर आलोचना भेज दीजिए, हम अपने पत्र में छाप देंगे ?" सोचता रहा, क्या समझ कर उन्होंने मुझसे ऐसी बात कह दी ? जिसे उन्होंने चन्दन समझा था वही अंगार बन कर माथे में जलता रहा। हम साहित्य रच रहे हैं या दुकानदारी कर रहे हैं ? जब साहित्य में दुकानदारी होती है तो इतिहास देवता ऐसा शाप देते हैं कि फिर साहित्यकार और समाज ऊंचा उठने की धुन में पाताल में धंसते चले जाते हैं। अर्थहीन शब्दों के खिलवाड़ होते रहते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और यह अर्थहीनता सारे समाज की चेतना को निष्प्राण करने लगती है।

मेरे स्वजन सलाह देते हैं, "कौनसी दुनिया में रहते हो? आंखें खोलो। अगर बच कर नहीं चलोगे तो मारे जाओगे। हर चौराहे पर सलीबें गाड़ी जा रही हैं। तुम कुछ भी लिखो, कुछ भी रचो, उसका रत्ती भर भी मूल्य नहीं है। देख लेना, ये आलोचक और ये समाजसुधारक तुम्हें एक दिन किसी चौराहे में, किसी सलीब पर लटका देंगे। वक्त है, संभलो और बच निकलो।"

मेरे भीतर बैठा कोई कहता है, "जो बच निकलने की सोचता है, वही मरता है। जो सलीब को चूम लेता है वह कभी नहीं मरता। जब आदमी अपनी मर्जी से सलीब को चुनता है तो बहुत ऊंचा उठ जाता है। जो मर जाता है वही ईसा मसीह बन कर दुनिया में अमर हो जाता है और लोग उसे कभी मरने नहीं देते।"

मेरे सामने चौराहों पर अनेकों 'गिलोटिन' घूम रहे हैं। लोग भेड़ बकरियों की तरह घिघियाते, मिमियाते हुए आते हैं और तेज़ धार का एक ही वार उन्हें गाजर मूलियों की तरह काट फेंकता है।

फिर अचानक कोई 'सिडनी कार्टन' आता है। वह न रोता है न मिमियाता है, अजीब मुस्कान के साथ पूरे धैर्य और साहस के साथ 'गिलोटिन' के नीचे जा खड़ा होता है। 'गिलोटिन' की तेज छुरी उसके सिर को धड़ से जुदा कर देती है और उसी रात उस नगर के गली बाज़ारों में चर्चा चल निकलती है, "उसका चेहरा अलौकिक लग रहा था, सबसे अलग, सबसे अधिक शान्त, अविचलित, खुदा के रसूल जैसा।" 'गिलोटिन' का तेज छुरा 'सिडनी कार्टन' को काट कर भी काट नहीं पाता, उसे अमर कर जाता है।

मैं अपने मन में फैसला करता हूं, दोस्तों की राय नेक भले ही हो लेकिन सूलियों की ओर जाने वाली राह भी गलत नहीं है, इन सूलियों से बग़ैर घबराए इन तक शान्त और मजबूत कदमों से बढ़ता हुआ आदमी ही उच्चतम और श्रेष्ठतम को पा सकता है। मेरे कदम अनायास ही उस दिशा में निर्भय होकर उठने [illegible]ों पर सूलियां गाड़ी जा रही हैं।

SPS

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE